उपनिषद् सार

(ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय और श्वेताश्वतर-उपनिषद्)

जन जन की भाषा में

राजेन्द्र कुमार गुप्ता

निवेदन

उपनिषद् वैदिक साहित्य के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग, भारतीय आध्यात्मिक चिंतन के मूलाधार और भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के स्रोत हैं । उपनिषद् शब्द का साधारण अर्थ है- 'समीप उपवेशन' या समीप बैठना, अर्थात ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए शिष्य का गुरु के पास बैठना । इनमें वेदों का सार तत्त्व अर्थात ब्रह्मविद्या का निचोड़ समाहित है । यों तो उपनिषदों की संख्या बहुत अधिक है (लगभग 108) लेकिन इनमें ग्यारह उपनिषद् मुख्य हैं और उनमें भी नौ-यथा ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय और श्वेताश्वतर उपनिषद् प्रमुखतर हैं जो ब्रह्मतत्त्व का सीधे और स्पष्ट शव्दों में निरूपण करते हैं । इस पुस्तक में इन्हीं नौ उपनिषदों के सार तत्त्व को सरल जन जन की भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

ईशावास्योपनिषद् शुक्ल यजुर्वेदीय शाखा का उपनिषद है । इस उपनिषद् में परमेश्वर को सर्वनिर्माता, सारे ब्रह्मांड के स्वामी के रूप में प्रतिपादित किया गया है और सात्विक जीवनशैली की बात कही गई है । इस उपनिषद् में कुल अठारह मन्त्र हैं जिनमें केवल आत्मतत्त्व का वर्णन है और प्रत्येक शब्द में ब्रह्म, उपासना, प्रार्थना आदि झंकृत है ।

केनोपनिषद सामवेदीय शाखा का उपनिषद है । केनोपनिषद् (केन + उपनिषद्) में पहले मंत्र का पहला शब्द 'केन' (अर्थात किससे) है, इसलिए इसे केन उपनिषद कहा जाता है । इस उपनिषद के चार खण्ड और कुल तैंतीस मन्त्र हैं । इसमें गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा प्रेरक सत्ता के बारे में और देवताओं में अभिमान व देवी ऊमावती द्वारा "ब्रह्म तत्व' ज्ञान का उल्लेख है । मनुष्य को "श्रेय" मार्ग (ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग) की ओर प्रेरित करना इस उपनिषद का मुख्य लक्ष्य है ।

कठ उपनिषद् या कठोपनिषद कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा के अन्तर्गत एक उपनिषद है । इसका मुख्य उद्देश्य यम और नचिकेता के संवाद द्वारा आत्म-विषयक ज्ञान का प्रतिपादन करना है । नचिकेता के पिता, ऋषि अरुण के पुत्र उद्दालक लौकिक कीर्ति की इच्छा से विश्वजित (अर्थात विश्व को जीतने का) यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं जिसमें याजक द्वारा अपनी समग्र सम्पत्ति का दान करना यज्ञ की प्रमुख विधि है लेकिन पिता को दुर्बल और मृतप्राय: गौओं का दान करते देख नचिकेता आपने पिता से पूछता है कि वे उसे किसे दान दे रहे हैं ? बार-बार पूछने पर क्रोधित पिता उसे यम को दान में देने की बात कहते हैं । नचिकेता तीन रात्रि यम के द्वार पर बिना कुछ खाए-पिए प्रतीक्षा करता है और अतिथि को अपने द्वार पर प्रतीक्षा कराने के प्रायश्चित स्वरूप यम द्वारा तीन वर देने पर नचिकेता उनसे

ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करता है । कठोपनिषद् में दो अध्याय हैं जो तीन-तीन वल्ली में विभाजित हैं और इसमें कुल 119 मन्त्र हैं ।

प्रश्नोपनिषद अथर्ववेदीय शाखा का उपनिषद् है । इस उपनिषद् के प्रवक्ता आचार्य पिप्पलाद हैं । इसमें छः प्रश्न और उनके उत्तर (व्याख्या) है । ये प्रश्न भरद्वाज पुत्र सुकेशा, शिविकुमार सत्यकाम, गर्गगौत्री सौर्यायणी, कौसल्य आश्वलायन, विदर्भ के भार्गव व कत्य के प्रपोत्र कबन्धी इन छः ऋषियों द्वारा पूछे गए हैं जिनका उत्तर महर्षि पिप्पलाद द्वारा दिया गया है । इनमे पहले तीन प्रश्न अपरा विद्या और शेष तीन प्रश्न परा विद्या सम्बन्धी हैं । इस उपनिषद् में कुल 67 मन्त्र हैं ।

मुण्डक उपनिषद् अथर्ववेदीय शाखा का उपनिषद् है । इस उपनिषद् में परम्परागत ज्ञान के आधार पर अंगिरा ऋषि द्वारा शौनक ऋषि को ब्रह्मविद्या का उपदेश किया गया है जिसमें उन्होंने विद्या के परा और अपरा भेद करके वेद वेदांग को अपरा तथा उस ज्ञान को पराविद्या नाम दिया जिससे अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है । इसमें तीन मुण्डक हैं जो दो-दो खण्डों में विभाजित हैं और इसमें कुल 64 मन्त्र हैं ।

माण्डूक्योपनिषद् अथर्ववेदीय शाखा के अन्तर्गत एक उपनिषद् है । इसमें आत्मा या चेतना की चार अवस्थाओं-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय का वर्णन मिलता है । इस उपनिषद् में ॐ की मात्राओं की विलक्षण व्याख्या करके जीव और विश्व की ब्रह्म से उत्पत्ति और लय एवं तीनों का तादात्म्य अथवा अभेद प्रतिपादित हुआ है । इस उपनिषद् में कुल 12 मन्त्र हैं ।

ऐतरेयोपनिषद् ऋग्वेद शाखा का उपनिषद् है । यह ब्रह्मविद्याप्रधान है जिसमें परमात्मा द्वारा सृष्टि की रचना, देवताओं का मानव शरीर में नियत स्थानों पर वास और स्वयं परमात्मा का ब्रह्मरंध्र को चीर उसमें प्रवेश करने का और वामदेव ऋषि द्वारा गर्भ में ही ज्ञान की श्रेष्ठता को जानना वर्णित हुआ है । इस उपनिषद् में तीन अध्याय और 33 मन्त्र हैं ।

तैत्तिरीयोपनिषद कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा के अन्तर्गत एक उपनिषद है । इस उपनिषद् में अधिलोक आदि की सन्धियों की व्याख्या, भूः, भुवः, स्वः व महः व्याहृतियों की विषद व्याख्या, अन्नमय आदि कोशों का विवरण, सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन और ब्रह्म की व्याख्या है । आनन्द की भी मीमांसा प्रस्तुत की गई है । यह शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली इन तीन खंडों में विभक्त है । इसमें कुल 53 मंत्र हैं जो 40 अनुवाकों में व्यवस्थित है ।

श्वेताश्वतर उपनिषद् इस पुस्तक के क्रम में अंतिम नौवां लेकिन अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है । यह कृष्ण यजुर्वेद का अंग है । इस छह अध्याय और 113 मंत्रों के उपनिषद् को यह नाम इसके प्रवक्ता श्वेताश्वतर ऋषि के कारण प्राप्त है । योगिक अवधारणाओं की व्याख्या करता यह उपनिषद् अनेक प्रश्न यथा ब्रह्म क्या है अथवा इस सृष्टि का कारण ब्रह्म है अथवा अन्य कुछ, हम कहाँ से आए, किस आधार पर ठहरे हैं, हमारी अंतिम स्थिति क्या होगी, हमारे सुख दुःख का हेतु क्या है, का समाधान करता है और जीव, जगत् और ब्रह्म के स्वरूप तथा ब्रह्मप्राप्ति के साधन बतलाता हैं । इसके अलावा यह उपनिषद् सचेत करता है कि यह रहस्यमय ज्ञान अशान्त, स्वपुत्र या जो शिष्य न हो, ऐसे व्यक्ति को नहीं देना चाहिए और पुत्र या शिष्य की अयोग्यता इसमें बाधक नहीं है क्योंकि उन्हें योग्य बनाना पिता व गुरु का ही दायित्व है ।

इस कार्य का मुख्य आधार गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'ईशादि नौ उपनिषद्' है जिसके व्याख्याकार माननीय श्री हरिकृष्णदास गोयन्दका और नेट पर उपलब्ध सामग्री हैं । मैं गीताप्रेस गोरखपुर और माननीय श्री हरिकृष्णदास गोयन्दकाजी का हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने पाठकों को इसे उपलब्ध कराने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

इन नौ उपनिषदों में कुल मिलाकर 512 मन्त्र हैं जिनका अनुवाद इस पुस्तक में 700 पदों में बन पड़ा है । इस प्रस्तुति का मुख्य उद्देश्य सामान्य जनों को सीधी-सरल भाषा में इन उपनिषदों में निहित ज्ञान से परिचित कराना मात्र है । इसमें जो कुछ सफलता मिल पाई है, वह गुरुजनों का कृपाप्रसाद उन्हीं के श्रीचरणों में सादर समर्पित है । पाठक अपने सुझाव, आलोचना आदि rkgupta51@yahoo.com पर व मोबाइल न. 9899666200 पर भेज सकते हैं । वे website www.sufisaints.net देखने के लिए भी आमंत्रित हैं ।

24.06.2024 विनीत

राजेन्द्र कुमार गुप्ता

विषय-सूची

1. ईशावास्योपनिषद् 3
2. केनोपनिषद् 9
    - प्रथम खण्ड 9
    - द्वितीय खण्ड 10
    - तृतीय खण्ड 10
    - चतुर्थ खण्ड 11
3. कठोपनिषद् 15
    - प्रथम अध्याय 15
        - प्रथम वल्ली 15
        - द्वितीय वल्ली 17
        - तृतीय वल्ली 19
    - द्वितीय अध्याय 21
        - प्रथम वल्ली 21
        - द्वितीय वल्ली 22
        - तृतीय वल्ली 23
4. प्रश्नोपनिषद् 29
    - प्रथम प्रश्न 29
    - द्वितीय प्रश्न 31
    - तृतीय प्रश्न 32
    - चतुर्थ प्रश्न 34
    - पञ्चम प्रश्न 36
    - षष्ठ प्रश्न 37
5. मुण्डकोपनिषद् 41
    - प्रथम मुण्डक 41
        - प्रथम खण्ड 41
        - द्वितीय खण्ड 42

द्वितीय मुण्डक 44

प्रथम खण्ड 44

द्वितीय खण्ड 45

तृतीय मुण्डक 46

प्रथम खण्ड 46

द्वितीय खण्ड 46

6. माण्डूक्योपनिषद् 51

7. ऐतरेयोपनिषद् 55

प्रथम अध्याय 55

प्रथम खण्ड 55

द्वीरीय खण्ड 56

तृतीय खण्ड 57

द्वितीय अध्याय 58

प्रथम खण्ड 58

तृतीय अध्याय 59

प्रथम खण्ड 59

8. तैतिरीयोपनिषद् 63

शिक्षा-वल्ली 63

ब्रह्मानन्दवल्ली 68

भृगुवल्ली 73

9. श्वेताश्वतरोपनिषद् 79

प्रथम अध्याय 79

द्वितीय अध्याय 81

तृतीय अध्याय 83

चतुर्थ अध्याय 84

पञ्चम अध्याय 87

षष्ठ अध्याय 88

ईशावास्योपनिषद्

“ॐ ईशावास्योपनिषद्”[1]

“शान्तिपाठ”

परब्रह्म पुरुषोत्तम पूर्ण सर्वदा,
उनसे ही उपजा जगत भी पूर्ण,
पूर्ण में से पूर्ण निकल कर भी,
जो बच रहता वो फिर भी पूर्ण ।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

“ॐ”

व्याप्त है यह अखिल ब्रह्माण्ड,
समस्त चर-अचर सब ईश्वर से,
उसके लिए ही हों सब कर्म,
ममता या आसक्तिवश न भूले से ।

शास्त्रनियत कर्मों को करते,
हो प्रयास दीर्घ जीवन जीने का,
सम्भव तभी कर्म-बन्धन से मुक्ति,
कोई और मार्ग न इसके सिवा ।

विषयोपभोग में ही जो लगे रहते,
करते हनन अपनी आत्मा का,
कर्म-बन्धन की जंजीरों में जकड़,
पाते क्लेश घोर असुर लोकों का ।

अचल और एक हैं परमेश्वर,
मन से भी अधिक तीव्र गतियुक्त,
ज्ञानस्वरूप, देवताओं को भी अज्ञेय,
स्थित रहकर भी अन्य धावकों[2] से द्रुत ।

वायु आदि देवताओं की शक्ति,
जिससे वे जलवर्षा, प्रकाशादि करते,
परमेश्वर की शक्ति का अंश-मात्र,
जिसके बिना वे कुछ कर नहीं सकते ।

चलते भी हैं, और नहीं भी चलते,
दूर से दूर और पास से पास,
समस्त जगत के भीतर परिपूर्ण,
और बाहर भी परमेश्वर का वास ।

उनकी अचिन्त्य शक्ति की महिमा,
परस्पर विरोधी गुणों से वो भरपूर,
भक्तों के लिए सदा समीप परमेश्वर,
श्रद्धा और प्रेम रहित लोगों से दूर ।

भक्तों के लिए लीला, उनका चलना,
निर्गुणरूपी अचलता, न चलना उनका,
इस समस्त जगत के परम आधार,
सब कारणों के कारण, परम नियन्ता ।

---

[1] उपनिषद् शब्द का साधारण अर्थ है-‘समीप उपवेशन’ या समीप बैठना, अर्थात ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए शिष्य का गुरु के पास बैठना । महर्षि वेदव्यास रचित ईशावास्योपनिषद् निसंगभाव से जीवनयापन और आत्म तत्त्व को पहचानने, विद्या, अविद्या में भेद जानने और मृत्यु को जीतकर अमरत्व की ओर अग्रसर होने को प्रेरित करता है । यह उपासक को प्रेरित करता है कि वह जाने कि वह स्वयं ब्रह्मरूप है और पञ्चभौतिक शरीर के राख में परिवर्तित हो जाने पर वह दिव्य पथ से चरम गंतव्य की ओर उन्मुख हो ।

[2] अन्य धावक-अर्थात मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और वायु आदि देवता, जो परमेश्वर के अनुसंधान में निरंतर दौड़ लगाते रहते हैं, लेकिन परमेश्वर नित्य अचल रहते हुए भी उनकी पकड़ में नहीं आते ।

परमात्मा में देखता प्राणिमात्र को,
और परमात्मा को सब जीवों में,
कैसे किसी से वो घृणा कर सकता,
लगा रहता वो सबकी सेवा करने में ।

एकमात्र तत्त्व परमात्मा देखने से,
उसे सदा-सर्वत्र परमात्मा ही दिखते,
मिट जाते शोक, मोह आदि विकार,
हृदय में आनन्दघन प्रभु बस रहते ।

वह महापुरुष प्राप्त होता सर्वेश्वर को,
शुद्ध सचिदानन्दघन, सर्वदृष्टा, देहरहित,
प्रकट होते अनादि काल से स्वेच्छा से,
सब पदार्थों के रचेता, विभाग सहित ।

जो विषय-भोग हेतु अविद्या[3] उपासते,
अज्ञानस्वरूप अन्धकार में करते प्रवेश,
पर जो ज्ञान के मिथ्याभिमान में रत,
वे और घने अन्धकार में करते प्रवेश ।

सर्वोत्तम फल प्राप्त कराने वाले ज्ञान का,
यथार्थ स्वरूप है विवेक नित्य-अनित्य का,
भोगों से विरक्ति, संयमपूर्ण पवित्र जीवन,
परब्रह्म के चिन्तन में अखण्ड संलग्नता।

यथार्थ ज्ञान के अनुष्ठान से, सुना है,
परब्रह्म परमेश्वर की होती प्राप्ति,
और कर्मों के यथार्थ अनुष्ठान[4] से,
दुर्गुण, हर्ष-शोकादि से मिलती मुक्ति ।

ज्ञान के और कर्म के तत्त्व को भी,
जो मनुष्य जान लेता भली प्रकार,
मृत्युमय संसार से सहज तर जाता,
परमदेव परब्रह्म का करता साक्षात्कार ।

असम्भूत[5] देव-पितर-मनुष्यादि की,
जो मनुष्य उपासना किया करते,
अज्ञानरूप घोर अन्धकार में ऐसे,
अज्ञानी मनुष्य प्रवेश किया करते ।

लेकिन अविनाशी परमेश्वर की उपासना,
जो प्राणी मिथ्याभिमान[6] में रत हो करते,
उनकी गति और भी अधिक बुरी होती,
वे और भी अधिक अन्धकार में गिरते ।

धीर पुरुषों को हमने सुना है बतलाते,
सम्भूत और असम्भूत उपासना के फल,
अविनाशी ब्रह्म उपासना का एक फल,
और असम्भूत उपासना का दूसरा फल ।

---

[3] विद्या, अविद्या-परमात्मा की प्राप्ति का साधन 'विद्या' और स्वर्गादि लौकिक भोगों को प्राप्त करने का साधन 'अविद्या' कहा जाता है । अविद्या से मनुष्य को जन्म-मृत्युरुपी बन्धन में बंधे रहना पड़ता है, लेकिन ज्ञानाभिमानी द्वारा कर्तव्यकर्मों का त्याग और शास्त्र-विरुद्ध आचरण उसे और भी अधिक अन्धकार अर्थात नीच योनियों और नरक की ओर धकेलता है ।

[4] कर्म में कर्तापन के अभिमान और कर्मफल प्राप्ति की इच्छा का अभाव ।

[5] असम्भूत-जिसकी पूर्णरूप से सत्ता न हो; विनाशशील ।

[6] मिथ्याभिमान-झूठ-मूठ ईश्वर उपासना का ढोंगकर शास्त्रसम्मत कर्मों का त्याग और लोगों को गुमराह करना ।

अविनाशी परमेश्वर और देवादि को,
जान लेता जो साथ-साथ यथार्थ से,
देवादि की अनासक्त भाव से पूजा कर,
पा लेता परमेश्वर, शुद्ध अन्तःकरण से ।

हे सबका भरण-पोषण कर्ता परमेश्वर !
आपकी सत्यरूपी भक्ति में मैं लगा,
अपने सचिदानन्द रूप के दर्शन कराइए,
श्रीमुख से हिरण्यमय[7] आवरण को हटा ।

हे भक्तों के पोषक ! हे ज्ञानसोत्र !
हे परम नियन्ता ! परम लक्ष्य सबके,
समेट लीजिए अपने तेज का समूह,
सबके सारभूत आप, प्रिय प्रजापति के ।

प्रत्यक्ष दर्शन कराइए अपना दिव्यस्वरूप,
दर्शन कर रहा जिसका ध्यान-दृष्टि से,
इस सूर्य और समस्त विश्व की आत्मा,
हे परम पुरुष, मैं भी वही हूँ, साररूप से ।

अब ये मेरे प्राण और मेरी इन्द्रियाँ,
प्रविष्ट हो जाएँ समष्टि वायु तत्त्व में,
अग्नि में भस्म हो जाए स्थूल शरीर,
मेरी भक्ति स्मरण कर, स्वीकारें मुझे ।

परम धनरूप परमेश्वर की सेवा में,
हे अग्निदेव ! मुझे पहुँचाने के लिए,
ले चलिए मुझे सुन्दर शुभ मार्ग से,
प्रतिबंधकरूप पापों को दूर कीजिए ।

नमस्कार आपको बारम्बार नमस्कार,
पुनः पुनः आपको नमस्कार, नमस्कार ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

[7] हिरण्यमय आवरण-प्रकाशमय सूर्यमण्डल का आवरण, अर्थात सब तरह का आवरण हटा अपने सचिदानन्द रूप का दर्शन दीजिए ।

केनोपनिषद्

"ॐ केनोपनिषद्"[8]

"शान्तिपाठ"

हे परब्रह्म परमात्मन् ! परिपुष्ट हों,
मेरे सभी अंग, इन्द्रियाँ, प्राण आदि,
अस्वीकार न करूँ सर्वरूप ब्रह्म को,
और परब्रह्म त्यागें न मुझको कभी ।

मेरा और परब्रह्म का परस्पर सम्बन्ध,
नित्य बना रहे और होता रहे प्रगाढ़,
उपनिषदों में प्रतिपादित सारे धर्मसमूह,
परमात्मा में लगे, मुझमें सदा करें वास ।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

प्रथम खण्ड

"ॐ"

(शिष्य का प्रश्न)
कौन और कैसा है, वह स्फूर्तिदाता,
जिससे प्रेरित मन विषयों में गिरता,
कौन इन्द्रियों को लगाता कार्य में,
किसके द्वारा प्राण देह में चलता ?

(गुरु द्वारा उत्तर)
मन, प्राण और सम्पूर्ण इन्द्रियों का,
और समस्त जगत का परम कारण,
उत्पन्न हुए, सब शक्ति पाते जिससे,
सर्वज्ञ परब्रह्म, सब कारणों का कारण ।

उसे जानकर, उसे जानने वाले,
जीते जी ही जीवनमुक्त हो जाते,
इस लोक से प्रयाण करने के बाद,
वे अमृतस्वरूप विदेहमुक्त[9] हो जाते ।

देखा, सुना न जा सकता ब्रह्म,
इन्द्रियाँ उस तक पहुँच नहीं सकती,
इन्द्रियों की जो चेतना और क्रिया,
उसी ब्रह्म की प्रेरणा और शक्ति ।

ब्रह्मतत्त्व को कोई कैसे समझाए,
जानना, बताना कठिन वाणी के द्वारा,
जड़ और चेतन वह दोनों से भिन्न,
समझाया ही जा सकता संकेत के द्वारा ।

वाणी द्वारा जो बतलाया जा सकता,
या उससे व्यक्त तत्त्व की उपासना,
वास्तविक स्वरूप नहीं वह ब्रह्म का,
ब्रह्मतत्त्व है वाणी से अतीत सर्वथा ।

जिसकी शक्ति के किसी अंश से,
वाणी शक्ति पाती प्रकाशित होने की,
वाणी का भी ज्ञाता, प्रेरक, प्रवर्तक,
वह ब्रह्म है, वाणी उपज है उसकी ।

बुद्धि और मन से भी परे ब्रह्म,
उनका ज्ञाता और प्रेरक है ब्रह्म,
मनन और निश्चय की शक्ति देता,
अपनी शक्ति के किसी अंश से ब्रह्म ।

---

[8] केनोपनिषद्-इस उपनिषद् में गुरु-शिष्य संवाद द्वारा परब्रह्म तत्त्व का गहन प्रतिपादन किया गया है । इस उपनिषद् के चार खण्ड हैं ।

[9] विदेहमुक्त-अर्थात आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ।

चक्षु द्वारा जो देखा, जाना जा सकता,
या कानों द्वारा सुना, जाना जा सकता,
इनसे अतीत यथार्थ स्वरूप है ब्रह्म का,
ब्रह्म इनकी शक्ति का है शक्तिदाता ।

प्राण से चेष्टायुक्त नहीं होता ब्रह्म,
बल्कि प्राणों को चेष्टा देता है ब्रह्म,
प्राणों का ज्ञाता, प्रेरक, शक्तिदाता,
प्राणों का भी प्राण, तू जान ब्रह्म ।

द्वितीय खण्ड

यदि मानता तू जान गया ब्रह्म को,
तो निश्चय ही तू थोडा सा ही जानता,
तुझमें और देवताओं में ब्रह्म का अंश,
सब मिलकर भी अल्प ही अंश ब्रह्म का ।

जो मानता ब्रह्म जाना नहीं जा सकता,
उनके लिए ही सम्भव जानना उसका,
ज्ञानाभिमानवश ब्रह्म को जाना मानता,
वह तो वस्तुत: भ्रम में ही है सर्वथा ।

जो परमेश्वर का साक्षात् कर लेते,
उनमें अभिमान शेष रह नहीं जाता,
वे समझते परमात्मा जानता स्वयं को,
सीमित, असीमित को कैसे जान सकता ?

ज्ञानी जो मानते जान लिया ब्रह्म को,
नहीं जानते, ब्रह्म विषय नहीं ज्ञान का,
जानने का अभिमान, अवरोध साक्षात् में,
निराभिमानी को सम्भव ब्रह्म का पाना ।

परमात्मा के स्वरूप का ऐसा ज्ञान,
इसी ज्ञान से प्राप्ति होती उसकी,
यह ज्ञानरूपी शक्ति मिलती उसी से,
परमात्मा का यथार्थ रूप जो जनाती ।

उसे जानना परम पुरुषार्थ जीवन का,
यह अवसर खोना, कारण विनाश का,
प्रत्येक प्राणी में उसका साक्षात्कार कर,
धीर पुरुष लाभ प्राप्त करते जीवन का ।

तृतीय खण्ड

देवताओं को निमित्त बनाकर परमेश्वर ने,
देवताओं के लिए विजय असुरों पर पायी,
पर मिथ्याभिमानवश देवताओं ने समझा,
असुरों पर विजय हमने स्वयं ही पायी ।

उनका अभिमान जान, अहैतुकी[10] कृपाकर,
उनके सामने साक्षात् प्रकट हुए भगवान,
उनको यक्ष रूप में प्रकट हुआ देखकर भी,
देवता उन परब्रह्म को न पाए पहचान ।

इन्द्रादि देवताओं ने अग्निदेव से कहा,
आप जातवेदा[11] हैं, इनका पता कीजिए,
अपनी बुद्धि-शक्ति पर गर्वित अग्निदेव,
सब जगह पहुँच-वाले, तुरन्त चल दिए ।

उस दिव्य यक्ष के उनसे पूछने पर,
अग्निदेव ने कहा अग्निदेव हूँ मैं,
अपने तेज:पुन्ज रूप के अभिमान वश,
बोले, 'जातवेद' नाम से प्रसिद्द हूँ मैं ।

---

[10] अहैतुकी-अर्थात बिना किसी स्वार्थ वश; अपने भक्तों के अभिमान को हरने के लिए ।

[11] जातवेदा-अग्नि का एक नाम जातवेदा है, क्योंकि अग्नि प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान रहता है और समस्त पदार्थों का ज्ञान रखता है ।

उनकी सामर्थ्य पूछने पर अग्निदेव बोले,
भस्मीभूत कर सकता, मैं सब जलाकर,
पर यक्ष द्वारा रखे एक तिनके को भी,
अग्निदेव जला न सके, पूरा प्रयास कर ।

लज्जित हो लौट गए जब अग्निदेव,
देवताओं ने वायुदेव से की विनती,
सम्भवत: यह गौरव उन्हें मिले, सोच,
यक्ष के पास पहुँच गए वे शीघ्र ही ।

पूछने पर बोले, वायुदेव हूँ मैं,
प्रसिद्द हूँ 'मातरिश्वा'[12] के नाम से,
सामर्थ्य पूछने पर वायुदेव ने कहा,
आकाश में उड़ा दूँ, मैं चाहूँ जिसे ।

तब यक्ष ने एक तिनके को रख,
इसे उड़ा दो, वायुदेव से कहा,
उड़ा न सके उस तिनके को वायुदेव,
वह यक्ष कौन है, पता न लगा ।

तदन्तर देवताओं ने इन्द्र से कहा,
वह यक्ष कौन है, पता लगाएँ जाकर,
पर इन्द्र के वहाँ पहुँचते ही यक्ष,
अन्तर्धान हो गया[13], बिना वार्ता कर ।

पर इन्द्र वहाँ से गए न लौटकर,
तब वहाँ पर प्रकट हुई उमादेवी,
उन्हें सादर प्रणाम कर बोले इन्द्र,
यह यक्ष कौन था, बताएँ, हे देवी !

चतुर्थ खण्ड

भगवती उमादेवी ने सपष्ट कहा,
वे तो हैं साक्षात् परब्रह्म परमात्मा,
उन परमात्मा की इस विजय में ही,
तुम मानने लगे थे अपनी महिमा ।

तुम्हारा मिथ्याभिमान नाश करने हेतु,
उन्हीं परमात्मा ने यक्ष रूप धारण किया,
अग्नि और वायु का गर्व चूर्ण कर,
तुम्हें यथार्थ ज्ञान दूँ, मुझे प्रेरित किया ।

अपनी स्वतन्त्र शक्ति का अभिमान छोड़,
उन्हीं परमात्मा की महिमा को समझो,
ब्रह्म की शक्ति ही सबकी प्रेरक शक्ति,
उन ब्रह्म को जान, उन्हीं की शरण लो ।

परमात्मा का सर्वप्रथम संस्पर्श करने वाले,
अग्नि, वायु और इन्द्र, श्रेष्ठ हैं औरों से,
उन्होंने ही यह सत्य समझा कि उन्होंने,
परमात्मा का साक्षात् किया पहले-पहले ।

इन्द्र अतिशय श्रेष्ठ है क्योंकि उसने,
ब्रह्म का स्पर्श किया सर्वप्रथम मन में,
उमादेवी से सुन अन्य देवताओं से पहले,
साक्षात् परब्रह्म को जाना इन्द्र ने ।

---

[12] मातरिश्वा-अन्तरिक्ष में चलने वाला; पवन, वायु; एक तरह की अग्नि ।

[13] यक्ष का अन्तर्धान होना-इन्द्र में और देवताओं से अधिक अभिमान था परन्तु इस दोष के अलावा वे ब्रह्म को जानने के अधिकारी थे, अत: ब्रह्मतत्व का ज्ञान कराने की व्यवस्था करने हेतु यक्ष बिना वार्ता किए उनके सामने से स्वयं अन्तर्धान हो गये ।

अन्य देवताओं ने सुनकर जाना इन्द्र से,
अग्नि और वायु ने वार्तालाप किया था,
इन्द्र के बतलाने पर ज्ञान हुआ उन्हें,
ब्रह्म का पहले यथार्थ ज्ञान न था ।

बिजली चमकने, पलक झपकने सा,
दर्शन दे अन्तर्धान हो जाते भगवान,
उस दिव्य आनन्द को पुन: पाने की,
उत्कट अभिलाषा जगा देते भगवान ।

अराध्य के समीप जाता हुआ सा जब,
साधक को अपना मन प्रतीत होता,
उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति मन में पाकर,
साधक का हृदय प्रेममय हो उठता ।

सभी के अतिशय प्रिय हैं परमेश्वर,
उनकी उपासना उचित इसी भाव से,
इस प्रकार जान लेता जो ब्रह्म को,
सभी प्राणी चाहते उसे उसी प्रेम से ।

शिष्य ने कहा, हे गुरुदेव ! मुझे,
उपदेश कीजिए आप ब्रह्मविद्या का,
गुरुदेव ने कहा, हम बतला चुके हैं,
उपरोक्त सब ही उपदेश है उसका ।

तपस्या, इन्द्रियनिग्रह और कर्त्तव्यपालन,
ब्रह्मविद्या के ये तीनों मुख्य आधार,
वेद उसका सर्वांग रूप से वर्णन करते,
परमेश्वर को पाने का मार्ग सदाचार ।

जो इस प्रकार यह रहस्य जान लेता,
उसके समस्त पाप-समूह नष्ट हो जाते,
अधिकारी हो जाता वो परमधाम का,
उसके आवागमन रुपी बन्धन कट जाते ।
ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

कठोपनिषद्

"ॐ कठोपनिषद्"[14]

"शान्तिपाठ"

रक्षा और पालन करें हमारा[15] परमात्मा,
हम दोनों साथ-साथ शक्ति प्राप्त करें,
तेजोमयी हो हमारी पढ़ी हुई विद्या,
हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें ।

प्रथम अध्याय

प्रथम वल्ली

"ॐ"

स्मरण कर परब्रह्म-परमात्मा का नाम,
इस उपनिषद् का हम आरम्भ करते,
फल चाहने वाले वाजश्रवा के पुत्र[16] ने,
अपना सारा धन दे दिया यज्ञ में ।

नचिकेता नामक उसका प्रसिद्द पुत्र,
यद्दपि उस समय अल्पायु ही था,
देने हेतु जराजीर्ण गायों को देख,
उसमें श्रद्धा का आवेश हो गया ।

सोचा, जो खाना-पीना बंद कर चुकीं,
दूध देना बंद कर दिया जिन गायों ने,
अधम लोक मिलता है उनके दाता को,
सो पिता को सतर्क करना चाहिए मुझे ।

यह सोचकर, पिता से पूछा उसने,
हे पिताजी ! किसे दान देंगे आप मुझे,
उत्तर न मिला, तीन बार पूछा तो,
क्रोधित पिता बोले, मृत्यु को दिया तुझे ।

नचिकेता ने सोचा, बहुत से शिष्यों में,
मेरा उत्तम श्रेणी का आचरण[17] रहा करता,
बहुतो में मध्यम, नीची श्रेणी न कभी,
यम का क्या प्रयोजन मैं साध सकता ?

पूर्वजों और सज्जनों का आचरण विचार,
मिथ्या आचरण क्यों अनित्य जीवन में,
असत्य आचरण अजर-अमर नहीं करता,
मर कर फिर जन्मता मनुष्य, जगत में ।

पिता से कहा, शोक मत कीजिए आप,
सत्य का पालन कर आप मुझे जाने दें,
तीन दिन प्रतीक्षा करता रहा नचिकेता,
यम के द्वार पर बिना अन्न-जल लिए ।

लौटने पर पत्नी ने यमराज से कहा,
अग्निदेव से अतिथि खड़े हैं द्वार पर,
सद्-गृहस्थ अतिथि का सत्कार करते हैं,
उन्हें प्रसन्न कीजिए पाद्य-अर्घ्य दे कर ।

अतिथि ब्राह्मण भूखा रहता जिस घर में,
वह मन्दबुद्धि दुर्भाग्य मोल ले लेता,
सौन्दर्य, सत्य, माधुर्य छोड़ देते साथ,
पुण्य क्षीण हो, पुत्र, धनादि खो देता ।

---

[14] कठोपनिषद् नचिकेता और यम के मध्य संवाद द्वारा परमात्मा के रहस्यमय तत्त्व का विशद वर्णन है । इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक में तीन-तीन वल्लियाँ हैं ।

[15] हमारा-अर्तात हम दोनों गुरु और शिष्य का ।

[16] ऋषि उद्धालक

[17] आचरण-पुत्रों और शिष्यों की तीन श्रेणियाँ होती हैं- उत्तम, मध्यम और अधम । गुरु या पिता के बिना कहे उनके मनोरथ को पूर्ण करने वाले उत्तम, कहने पर करने वाले मध्यम और कहने पर भी अनसुनी करने वाले अधम होते हैं ।

यम बोले, सत्कार योग्य माननीय अतिथि,
मेरे लिए आपका पूजन-सेवन कर्तव्य था,
मेरे प्रमाद से तीन रात्रि भूखे रहे हैं आप,
मुझसे यह बहुत बड़ा अपराध हो गया ।

नमस्कार आपको, हे अतिथिदेव भगवन !
मेरे दोष की निवृत्ति होकर कल्याण हो,
प्रत्येक रात्रि के बदले वरदान माँग लें,
एक-एककर तीन वर, जो आप चाहते हों ।

पहला वर यह माँगा नचिकेता ने,
लौटने पर मेरे पिता मुझसे प्रसन्न हों,
यम बोले, मृत्यु के मुख से छूटा देख,
शोकरहित और प्रेमपूर्ण हो जाएँगे वो ।

जरा-मरण, दुःख-भयादि नहीं स्वर्ग में,
उसको प्राप्तिरूप साधन अग्नि कहा जाता,
वो अग्निविद्या जाननी चाही नचिकेता ने,
दूसरे वर के रूप में कहा, यही माँगता ।

यम बोले, स्वर्गदायिनी अग्निविद्या को,
हे नचिकेता ! मुझसे भलीभाँति समझ लो,
अविनाशी लोक की प्राप्ति की आधाररूपा,
बुद्धिरूपी गुफा में उसे छिपी जान लो ।

उसका उपदेश दिया यम ने नचिकेता को,
कैसी, कितनी ईंटे आदि कुण्ड में लगतीं,
भलीभाँति समझ, नचिकेता ने दोहराया,
प्रसन्न हो यम ने उसे एक रत्नमाला दी ।

उसकी विलक्षण बुद्धि देख, यम बोले,
ये अग्नि प्रसिद्द होगी 'नचिकेत' नाम से,
इसका यज्ञादि सहित तीन बार अनुष्ठान,
मुक्ति देता जन्म-मृत्यु आदि बन्धन से ।

ब्रह्मा से उत्पन्न सृष्टि को जाननेवाले,
स्तवनीय इस अग्निदेव को जानकर,
निष्काम भाव से इसका चयन कर,
सफल मनोरथ होता अटल शान्ति पाकर ।

ईंटों के स्वरूप, संख्या, अग्नि-चयन विधि,
इन्हें जान, निष्काम अनुष्ठान जो करता,
देहपात से पहले ही मृत्यु का पाश तोड,
शोकरहित, दिव्य आनन्द अनुभव करता ।

तीसरे वर के रूप में तब नचिकेता ने,
पूछा मृत्यु के बाद आत्मा के विषय में,
कोई कहते यह रहता, कोई नहीं रहता,
आपका निर्णय बतलाएँ इस विषय में ।

उसकी पात्रता जाँचने हेतु यम ने कहा,
यह विषय आता न सहज ही समझ में,
देवता भी समझ न पाए इस विषय को,
कुछ और माँग लो तीसरे वर के रूप में ।

और भी दृढ़ता से तब नचिकेता ने कहा,
माना देवता भी इसे समझ न सके,
यह भी कि यह विषय अत्यन्त अगम्य है,
पर आपसा विज्ञ भी नहीं मिलेगा मुझे ।

कोई दूसरा वर नहीं इसकी तुलना में,
सो कृपाकर आप इसीका उपदेश कीजिए,
यम ने प्रलोभन दे उसे टालना चाहा,
कहा, धन, दीर्घायु, ले लो जो भी चाहिए ।

अनन्त काल तक जीने के साधन ले लो,
और बड़े भारी सम्राट बन जाओ,
उत्तम भोगों के योग्य बना दूँगा तुम्हें,
माँग लो दुर्लभ से दुर्लभ, जो चाहो ।

स्वर्ग की अप्सराओं सी स्त्रियाँ ले लो,
उनसे तुम अपनी सेवा करवाओ,
पर मत पूछो आत्मविषयक यह प्रश्न,
माँग लो अन्य कोई वर जो चाहो ।

नचिकेता बोला, क्षणभंगुर भोग हर लेते,
अन्त:करण सहित सभी इन्द्रियों का तेज,
इसके सिवा समस्त आयु भी अल्प है,
कभी-न-कभी मृत्यु को पाएगा हरएक ।

धन और भोगों से कभी तृप्ति नहीं होती,
कैसे कोई हीरे के बदले काँच माँग ले,
आपका दर्शन जीने योग्य दिला ही देगा,
आपके रहते मृत्यु का भी भय न मुझे ।

मनुष्य जीर्ण होने वाला मरण-धर्मा है,
इस तत्व को भलीभाँति समझने वाला,
आपसे महात्माओं का संग पाकर भी,
क्या कोई राग-रंग में भटकने वाला ?

जिस आत्मतत्त्व के विषय में लोग,
शंका करते कि यह रहता या नहीं,
उसका स्व-अनुभूत निर्णायक ज्ञान दें,
अन्य कोई वर मुझे चाहिए नहीं ।

द्वितीय वल्ली

दृढ़ निश्चयी, वैराग्यवान, निर्भीक जान,
नचिकेता को यम ने अधिकारी समझा,
तब ब्रह्मविद्या का उपदेश देने से पहले,
बताने लगे वे महत्त्व ब्रह्मविद्या का ।

बोले, श्रेय और प्रेय दो मार्ग होते हैं,
मनुष्य इनमें से जो चाहे चुन सकता,
श्रेय मार्ग परमार्थ साधन का हेतु,
प्रेय लौकिक और स्वार्गिक सुखों का ।

अधिकाँश तो परमार्थ का विचार छोड़,
दुनिया के भोगों में ही रहते आसक्त,
पर धीर पुरुष इन दोनों मार्गों में से,
श्रेय मार्ग पर ही होते अनुरक्त ।

बुद्धिमान मनुष्य दोनों का स्वरूप विचार,
भोगों को छोड़, परमार्थ साधन अपनाता,
मन्दबुद्धि लौकिक योगक्षेम की सोच,
श्रेय मार्ग को छोड़, प्रेय मार्ग अपनाता ।

लोक और परलोक के समस्त भोगों को,
हे नचिकेता ! सोच-समझ त्यागा तुमने,
अधिकाँश मनुष्य इनमें ही फँस जाते है,
उचित पात्र होने का परिचय दिया तुमने ।

विद्या और अविद्या नाम से प्रसिद्द,
दो साधन हैं विपरीत फल देने वाले,
परमार्थ मार्गी भोगों में नहीं फँसता,
तुम भी भोगों में नहीं फँसने वाले ।

अविद्या के भीतर रहते हुए भी,
स्वयं को बुद्धिमान मानने वाले,
वे मूर्ख भटकते रहते संसार-चक्र में,
जैसे अन्धे द्वारा चलाए जाने वाले ।

लौकिक मोह से बन्धे ऐसे अज्ञानी,
परलोक के विषय में सोच नहीं पाते,
इसी मृत्यु लोक को सत्य मानकर,
बारम्बार वे मेरे चंगुल में आते ।

यह आत्मतत्त्व सुनने को नहीं मिलता,
कितने ही सुनकर भी समझ नहीं पाते,
दुर्लभ इस गूढ़तत्त्व को जानने-बताने वाले,
और इससे आत्म-साक्षात्कार करने वाले ।

तर्क से अतीत, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म,
अल्पज्ञ यह तत्त्व-ज्ञान दे नहीं सकते,
प्रज्ज्वलित दीपक से ही दीपक जलता,
तर्क-वितर्क कर स्वयं इसे पा नहीं सकते ।

ऐसी निष्ठा जैसी तुमने पायी, नचिकेता,
महापुरुषों के सत्संग से ही मिला करती,
वे ही आत्मज्ञान सम्बन्धी बाते बतलाते,
ये निष्ठा ही आत्मज्ञान में प्रवृत करती ।

कर्मों द्वारा मिले भोग होते अनित्य,
अनित्य साधनों से अप्राप्य नित्य पदार्थ,
कर्त्तव्य बुद्धि से किए निष्काम कर्म से,
नित्य सुखरूप परब्रह्म हुए मुझे प्राप्त ।

बुद्धि सम्पन्न और निष्काम हो तुम,
ऐश्वर्ययुक्त स्वर्ग का भी त्याग कर दिया,
दृढ़ निश्चयी, तनिक भी आसक्त न हुए,
अधिकारी तत्त्वज्ञान के, सिद्ध कर दिया ।

योगमाया से ढका, सबके हृदय में स्थित,
नित्य साथ लेकिन सहज देखा नहीं जाता,
वो सनातन, शुद्ध चिन्तन से ही प्राप्य,
जिसे पाकर समस्त हर्ष-शोक मिट जाता ।

यह धर्ममय उपदेश विवेकपूर्वक विचार,
सूक्ष्म आत्मतत्त्व जो अनुभव कर लेता,
आनन्दस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर को पा,
उस आनन्द सागर में निमग्न हो लेता ।

तुम्हारे लिए खुला वो परमधाम का द्वार,
हे नचिकेता ! तुम्हें कोई रोक नहीं सकता,
तुम ब्रह्म प्राप्ति के उत्तम अधिकारी हो,
तुम्हारे लिए नचिकेता ! ऐसा ही मानता ।

प्रशंसा सुन संकोच में पड़े नचिकेता ने,
जिज्ञासा शांत करने हेतु यमराज से पूछा,
धर्म-अधर्म से अतीत, कार्य-कारण से परे,
काल से भी अतीत परमतत्त्व है कैसा ?

वेद जिस परमतत्त्व का प्रतिपादन करते,
जिस पद को पाने को तप किया जाता,
जिसे चाहने वाले ब्रह्मचर्य पालन करते,
उस 'ॐ' के बारे में, यम बोले, बतलाता ।

यह अविनाशी प्रणव 'ॐ'कार ही ब्रह्म है,
परब्रह्म परमपुरुष पुरुषोत्तम भी यही,
इस तत्त्व को समझ, इसके द्वारा साधक,
अभीष्ट रूप की कर सकता प्राप्ति ।

यह ॐकार ही है सर्वश्रेष्ठ आलम्बन,
सर्वोत्तम साधन परमतत्त्व को पाने का,
श्रद्धा-प्रेम सहित जो इसका आश्रय लेता,
नि:सन्देह गौरव पाता उसे पाने का ।

जन्मता, न मरता, नित्य ज्ञानरूप आत्मा,
न किसी से यह हुआ, न कोई इससे,
न किसी का कार्य, न कारण किसी का,
नित्य, शाश्वत और पुरातन सदा से ।

मरता नहीं आत्मा, शरीर के साथ,
किसी को मारता न मरता किसी से,
जड़ शरीर और भोगों से सर्वथा अछूता,
यह आत्मा नित्य है सदा-सदा से ।

जीवों के हृदयरुपी गुफा में रहनेवाला,
आत्मतत्त्व सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, महान-से-महान,
परमात्मा की उस महिमा को देख पाता,
परमात्मा की कृपा से ही कोई भाग्यवान ।

बैठा हुआ ही दूर-से-दूर चला जाता,
सोता हुआ भी सब ओर चलता रहता,
अपने ऐश्वर्य का तनिक अभिमान नहीं,
मुझ जैसे सिवा उसे कौन जान सकता ?

स्थिर न रहनेवाले शरीरों में जो,
स्थित शरीररहित, अविचलभाव से,
उस सर्वव्यापी परमेश्वर को जान,
धीर विचलित नहीं होते शोक से ।

प्रवचन, श्रवण, न बुद्धि से मिलते,
बल्कि उसी को प्राप्त होते परमेश्वर,
जिसको स्वयं वे स्वीकार कर लेते,
निज स्वरूप उसे ही दिखलाते परमेश्वर ।

निवृत्त न हुआ जो बुरे आचरण से,
इन्द्रियाँ संयत और मन शान्त न हुआ,
कैसे भी वो परमेश्वर को पा नहीं सकता,
जो उसकी कृपा का अधिकारी न हुआ ।

जिन कालस्वरूप परमेश्वर का भोजन,
सब जीवों सहित, स्वयं मृत्युदेव भी,
भला कैसे कोई उन्हें जान सकता,
जिसको वे स्वयं जनाए, जानता वही ।

तृतीय वल्ली

इस दुर्लभ मनुष्य शरीर के हृदयाकाश में,
जीवात्मा के संग अन्तर्यामी परब्रह्म रहते,
धूप-छाँव से करते वे शुभ-कर्मों का पान,
जीव भोक्ता, परमात्मा अभोक्ता[18] रहते ।

सामर्थ्य दीजिए भगवन हमें जानने का,
यज्ञादि शुभकर्म करने की विधि को,
आपकी आज्ञापालन हेतु करें अनुष्ठान,
पार कर सकें इस भवरुपी सिन्धु को ।

रथ समझो इस शरीर को ही तुम,
और जीवात्मा को इसका स्वामी समझो,
बुद्धि को हे नचिकेता ! समझो सारथि,
और मन को ही रथ की लगाम समझो ।

ज्ञानी इस रूपक में इन्द्रियों को घोड़े,
विषयों को उनके विचरने का मार्ग बताते,
शरीर, इन्द्रिय और मन के साथ रहनेवाले,
जीवात्मा को भोगों का भोक्ता बताते ।

अनन्त काल से परमात्मा से बिछुड़ा,
सुख खोजता जीव भटक रहा संसार में,
दयाकर मानव-तनरुपी रथ दिया उसे,
सब साधन फिर से मिलने के, प्रभु ने ।

---

[18] जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही शुभकर्मों के अवश्यम्भावी सत्फल का भोग करते हैं, लेकिन परमात्मा नितांत असंग और अभोक्ता भाव से जबकि जीवात्मा असंग नहीं रहता बल्कि भोक्ता भाव से उसका भोग करता है । इसीलिए उनकी उपमा धूप और छाँव की दी गई है, जीवात्मा छाया की भाँति अल्पज्ञ है और परमात्मा धूप की भाँति सर्वज्ञ ।

पर मोहवश भूल गया वो लक्ष्य को,
बुद्धिरूपी सारथि असावधान हो गया,
घोड़ों की इच्छा पर छोड़ दी लगाम,
इन्द्रियाधीन हो जीव भटकने लग गया ।

विवेकहीन बुद्धि और चंचल मन,
इनके अधीन हो जो जीव सदा रहता,
असावधान सारथि के घोड़ों की भाँति,
इन्द्रियों पर उसका वश नहीं रहता ।

बुद्धि विवेकयुक्त और मन वश में,
उसकी इन्द्रियाँ वश में रहतीं उसके,
लगा रहता उसका मन लक्ष्य की ओर,
जिसे पा लेता वो सुमार्ग पर चलके ।

अविवेकी, असंयतचित्त और अपवित्र,
नहीं पा सकता वो उस परमपद को,
भटकता रहता फिर वो संसार-चक्र में,
बारम्बार पाता रहता जन्म-मृत्यु को ।

विवेकबुद्धि, संयतचित्त और पवित्र जो,
परमपद पाकर, भवसागर से तर जाता,
विवेकरूपी सारथि मन की लगाम कस,
उसे परब्रह्म परमतत्त्व की ओर ले जाता ।

इन्द्रियों से बलवान हैं शब्दादि विषय,
जो खींचते इन्द्रियों को अपनी ओर,
विषयों से बलवान मन, मन से बुद्धि,
पर महान जीवात्मा का सब पर जोर ।

उस जीवात्मा से भी बलवती है,
भगवान की अव्यक्त मायाशक्ति[19],
माया से श्रेष्ठ हैं स्वयं परमपुरुष,
उनसे बढ़कर कोई नहीं, वे परमगति ।

हृदय में विराजमान परब्रह्म परमेश्वर,
अपनी माया के पर्दे में छिपे रहते,
उनके आश्रित, बुद्धि तीक्ष्ण की जिन्होनें,
वे ही उनकी दया से उन्हें देख पाते ।

इन्द्रियों को मन में निरुद्ध करे साधक,
मन को विलीन करे ज्ञानरूपी बुद्धि में,
फिर बुद्धि को आत्मा में विलीन कर,
आत्मा विलीन करे परमदेव परमेश्वर में ।

उठो, जागो और महापुरुषों को पाकर,
उस परब्रह्म परमेश्वर को जान लो,
छूरे की तीक्ष्ण धार सा दुर्गम बताते,
ज्ञानीजन उस तत्त्वज्ञान के पथ को ।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध रहित,
परमतत्त्व तक इन्द्रियों की पहुँच नहीं,
नित्य, अविनाशी, अनादि, असीम, सत्य,
उन्हें जान, मृत्यु शेष रह जाती नहीं ।

नचिकेता के प्रति यम का उपदेश,
यह है परम्परागत, सनातन उपाख्यान,
इसका वर्णन-श्रवण कर ब्रह्मलोक में,
अत्यन्त प्रतिष्ठित होते हैं बुद्धिमान ।

[19] मायाशक्ति को जीवात्मा से बलवती इसलिए कहा गया है क्योंकि जीव इस माया से मोहित रहता है और भगवद् कृपा द्वारा ही उससे मुक्ति पा सकता है ।

सर्वथा शुद्ध हो इस परमगुह्य प्रसंग को,
श्रद्धा से भगवद्प्रेमी भक्तों को सुनाता,
अनन्त फल दाता होता उसका वह कर्म,
जो उसे अनन्त होने में सक्षम बनाता ।

द्वितीय अध्याय

प्रथम वल्ली

स्वयं प्रकट होने वाले परमेश्वर ने,
बाहर जाने वाले बनाए इन्द्रियों के द्वार,
सो ब्राह्य सुख पाने को आतुर इन्द्रियाँ,
अन्तरात्मा की ओर नहीं खोलतीं द्वार ।

किंचित ही कोई बुद्धिमान मनुष्य,
अमर पद को पाने की इच्छा से,
बाहर की ओर से लौटाकर इन्द्रियों को,
अन्तरात्मा की ओर देखता उनसे ।

विषय-भोगों में ही जो आसक्त रहते,
पड़े रहते वे जन्म-मृत्यु के बन्धन में,
विवेक द्वारा नित्य अमर पद को जान,
बुद्धिमान अनित्य भोगों में नहीं फँसते ।

जिसकी दी ज्ञानशक्ति से अनुभव करता,
इन्द्रियों से सम्बन्धित विषय-सुखों को,
उसी के अनुग्रह से इनकी क्षणिकता जान,
समझ सकता, जो शेष रहता 'वही है वो' ।

स्वप्न और जाग्रत अवस्था के दृश्यों को,
जिसकी शक्ति से मनुष्य अनुभव करता,
उस सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापी सर्वात्मा को जान,
बुद्धिमान मनुष्य फिर शोक न करता ।

कर्मफलदाता, जीवनदाता, काल नियन्ता,
सबके हृदय में अन्तर्यामी रूप में देखता,
निंदा न करता, जिस परमात्मा को जान,
वही ब्रह्म है, जिसे पूछते, हे नचिकेता !

प्रकट हुए जो पञ्च-महाभूतों से पहले,
अपने संकल्परूप तप से ब्रह्मा के रूप में,
जीवों के हृदयरुपी गुफा में प्रविष्ट हुए,
वे वही हैं पूछते तुम जिनके विषय में ।

जगत की जीवनी शक्ति सहित उत्पन्न,
सब प्राणियों को बीजरूप में साथ ले,
हृदयरूपीगुहा में रहनेवाली भगवती अदिति,
भेद नहीं ब्रह्म व उनकी इस शक्ति में ।

गर्भ में छिपे परिपुष्ट शिशु के जैसे,
दो अरणियों में छिपे सर्वज्ञ अग्निदेव,
विज्ञों द्वारा जिनकी स्तुति, आदर होता,
वे वही हैं तुम्हारे द्वारा पूछे ब्रह्मदेव ।

जिनमें से सूर्य निकलते और विलीन होते,
जिनकी महिमा से यह लीला सदा चलती,
उनकी व्यवस्था कोई लाँघ नहीं सकता,
वही हैं ब्रह्म, जिनके अधीन सारी सृष्टि ।

जो परब्रह्म यहाँ है, वही वहाँ है,
जो परलोक में है वो ही लोक में,
उस एक में मोहवश नानात्व देखता,
बारम्बार पड़ता जन्म-मृत्यु के चक्र में ।

परमात्मा के सिवा कुछ नहीं जगत में,
उन्हें जाना जा सकता केवल मन से,
जो यहाँ देखता विभिन्नता की झलक,
बंधा रहता वो जन्म-मृत्यु के पाश से ।

हृदय में स्थित अंगुष्ठमात्र परम पुरुष,
भूत, भविष्य, वर्तमान का शासन करता,
उसे जान लेने के बाद उसे जाननेवाला,
किसी से घृणा-द्वेष, निन्दा नहीं करता ।

धूमरहित ज्योति वाला है वो ब्रह्म,
सनातन, वही आज और वही कल भी,
न कभी घटता, न कभी बढ़ता वो,
जिसे पूछते, वही है परमेश्वर अविनाशी ।

ऊँचे शिखर पर बरसा हुआ जल,
बहकर पर्वत के चारों ओर चला जाता,
विभिन्न वर्ण, आकार, गन्ध धारण कर,
पर्वत के चारों ओर बिखर जाता ।

देव, असुर, मनुष्यादि अन्य प्राणियों को,
परब्रह्म परमेश्वर से जो पृथक मानता,
बिखरे हुए जल की ही भाँति वो भी,
लोकों और योनियों में भटकता रहता।

निर्मल जल में बरसा हुआ वर्षा जल,
जैसे उसी क्षण निर्मल जल सा हो जाता,
परब्रह्म को एकमात्र सर्वस्व जानने वाला,
वैसे ही उससे तादात्म्यभाव को पा जाता ।

द्वितीय वल्ली

ग्यारह द्वारोंवाला[20] एक नगर है जिसमें,
विशुद्ध ज्ञानस्वरूप परमात्मा विराजते,
उन्हें जान, जो उनका भजन-स्मरण करते,
शोकरहित हो, जीवनमुक्त हो जाते ।

परमात्मा का साक्षात्कार कर वे,
छूट जाते जन्म-मरण के बन्धन से,
विदेहमुक्त हो जाते, मृत्यु के बाद,
यही वह ब्रह्म है तुम पूछते जिसे ।

प्राकृतिक गुणों से सर्वथा अतीत हैं वे,
परमधाम विराजित स्वयं प्रकाश पुरुषोत्तम,
अन्तरिक्ष में विचरने वाले वसु भी वे,
घर में अतिथि रूप में आने वाले श्रीमन् ।

यज्ञ की अग्नि और होता भी वे ही,
सभी मनुष्य, पितृ और श्रेष्ठ देवता भी,
जल, आकाश, वृक्ष, बीज, पर्वतादि वे ही,
सर्वश्रेष्ठ, महान और परमसत्य तत्त्व भी ।

प्राणों को जो ऊपर की ओर उठाते,
और अपान को जो नीचे धकेलते[21],
हृदय विराजित उन भजनीय परब्रह्म की,
सभी देवता उपासना करते रहते ।

---

[20] ग्यारह द्वार-दो कान, दो आँख, दो नासिका छिद्र, एक मुख, नाभि, गुदा, शिश्न एवं ब्रह्मरन्ध्र, इन ग्यारह द्वार वाला मनुष्य शरीर ।

[21] अर्थात जिनकी शक्ति द्वारा शरीर का सुचारू रूप से संचालन होता रहता है, जिनकी शक्ति से शरीरस्थित प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियादि के सभी अधिष्ठाता देवता उनकी प्रेरणा व उनकी प्रसन्नता के लिए अपने-अपने कार्यों में लगे रहते हैं ।

देह से जीवात्मा के निकल जाने पर,
जो शेष बच रहता वह ब्रह्म है यही,
प्राण-अपान के बल जीता नहीं प्राणी,
बल्कि जिसके आश्रित हैं ये, वो है वही ।

प्राण-अपान ही नहीं, जीवात्मा के साथ,
इन्द्रियादि भी उसका अनुसरण करते,
मरने पर जीवात्मा की गति बतलाता,
और कि परब्रह्म परमेश्वर क्या करते ?

शुभाशुभ कर्म और भावों के अनुसार,
कितने ही नाना योनियों में जन्म ले लेते,
नररूप में, पशु-पक्षी, वृक्ष, लता आदि,
कितने ही जड़-पदार्थ आदि बन रहते ।

कर्मानुसार नानाविध भोगों का निर्माता,
परमपुरुष, जीवों के प्रलय में भी जागता,
उसी विशुद्ध तत्त्व में आश्रित सब लोक,
वह 'वही' है, उसे कोई लाँघ नहीं सकता ।

जिस प्रकार सर्वव्यापी निराकार अग्नि,
प्रज्ज्वलित हो, वस्तुओं का रूप ले लेती,
वैसे ही वो अन्तरात्मा परब्रह्म भासता,
जीवों के जैसा, भीतर भी और बाहर भी ।

वस्तुओं के संयोग से अव्यक्त वायु जैसे,
उनके जैसा गति और शक्तिवाला दिखता,
वैसे ही जीवों के अनुरूप दिखता परमेश्वर,
भीतर भी और बाहर भी, उन्हीं के जैसा ।

जैसे समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाशक सूर्य,
नेत्रजनित ब्राह्य दोषों से लिप्त नहीं होता,
वैसे ही अन्तर्यामी परमेश्वर असंग रहते,
किसीके भी कर्मों के नहीं बनते भोक्ता ।

अद्‌वितीय और सबको वश में रखनेवाले,
लीला से अनेक रूप बना लेते परमात्मा,
जो सदा उन्हें अपने भीतर स्थित देखते,
उन्हीं को ही सनातन परमानन्द मिलता ।

जो नित्यों का नित्य, चेतनों का चेतन है,
अकेला ही कर्मफलभोगों का नियन्ता,
उस आत्मस्थित को जो सदा देखते रहते,
वे ही सेवन करते सदा अटल शान्ति का ।

वह अनिवर्चनीय परम आनन्द,
परमात्मा ही है, ज्ञानीजन मानते,
मन-वाणी से अतीत, कैसे जाना जाए,
उसका ज्ञान होता किस प्रकार से ?

सूर्य, चन्द्रमा, तारे न बिजलियाँ,
कुछ भी वहाँ पर होता न प्रकाशित,
सब उसी के अंश से शक्ति पाते,
उसी के तेज से यह जगत प्रकाशित ।

तृतीय वल्ली

ब्रह्माण्डरुपी सनातन पीपल के वृक्ष का,
परमेश्वररुपी मूल है ऊपर की ओर,
ब्रह्मा से मनुष्य और पशु-पक्षी तक,
इसकी शाखाएँ फैली हैं नीचे की ओर ।

वह विशुद्ध तत्त्व ही अमृत कहलाता,
ये समस्त लोक आश्रित हैं जिसके,
उसका उल्लन्घन कोई कर नहीं सकता,
यह वही परमतत्व है तुम पूछते जिसे ।

उन्हीं से निकला यह सम्पूर्ण जगत,
उन्हीं परब्रह्म परमेश्वर से चेष्टा करता,
वज्र सा सर्वशक्तिमान जो जानते उन्हें,
उन तत्वज्ञों का भव-बन्धन कट जाता ।

सबके शासक और सबके नियन्ता वे,
जिनके भय से अग्नि और सूर्य तपता,
अपने-अपने कार्यों में प्रवृत हो रहते,
इन्द्र, वायु और पाँचवे मृत्यु देवता ।

नर-तन का पतन होने से पहले-पहले,
कर लेना चाहिए परमात्मा का साक्षात्कार,
वरना कौन जाने कब मिले यह अवसर,
कितनी योनियों में जन्म लेने के बाद ।

सामने आई हुई वस्तु की छवि,
जिस प्रकार धूलरहित दर्पण में दिखती,
वैसे ही उस परब्रह्म-परमेश्वर की छवि,
तत्वज्ञों के शुद्ध अन्तःकरण में दिखती ।

स्वप्न में भ्रमित जैसे देखता कोई वस्तु
पितृलोक में वैसे ही परमेश्वर दिखते,
गन्धर्वलोक में जल में अस्थिर छवि से,
ब्रह्मलोक में छाया और धूप[22] से दिखते ।

विषयों के अनुभव हेतु बनी इन्द्रियों का,
स्वभाव व उनकी परिवर्तनशीलता[23] जान,
धीर पुरुष सदा को शोकरहित हो जाता,
उनसे विलक्षण आत्मा[24] का स्वरूप जान ।

सभी इन्द्रियों से श्रेष्ठ है मन,
और बुद्धि श्रेष्ठतर है मन से,
जीवात्मा है बुद्धि से भी ऊँचा,
और अव्यक्त[25] शक्ति उत्तम उससे ।

लेकिन इस अव्यक्त से भी श्रेष्ठ हैं,
व्यापक और आकाररहित वे परमपुरुष,
जिसे जान, आनन्दमय ब्रह्म को पाकर,
जीवात्मा सदा के लिए हो जाता मुक्त ।

प्राकृत चक्षु असमर्थ होते देखने में,
परमब्रह्म परमात्मा का दिव्यस्वरूप,
दृढ़ चिन्तन और ध्यान से ही प्रकटता,
निर्मल और निश्चल हृदय में वो रूप ।

मन के सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ,
भलीभाँति जब स्थिर हो जाती,
बुद्धि भी हो जाती जब चेष्टारहित,
वह स्थिति परमगति कही जाती ।

---

[22] ब्रह्मलोक में जीवात्मा और परमात्मा दोनों पृथक-पृथक छाया और धूप से दिखाई देते हैं ।

[23] परिवर्तनशीलता-जाग्रत अवस्था में कार्यशील हो जाना और सुषुप्तिकाल में लय हो जाना ।

[24] ये इन्द्रिय, मन ओर बुद्धि आदि या उनका संघातरूप यह शरीर मैं नहीं हूँ बल्कि इनसे विलक्षण नित्य चेतनरूप आत्मा हूँ ।

[25] अव्यक्त शक्ति-कारणशरीर जो परमात्मा की प्रकृति का अंश है जिसने सबको बन्धन में डाल रखा है ।

इन्द्रिय, मन, बुद्धि की स्थिर धारणा,
अनुभवी योगीजन इसे ही कहते हैं योग,
प्रमाद से सर्वथा रहित होता तब योगी,
लेकिन उदय और अस्त[26] होता ये योग ।

वाणी, मन और चक्षुओं से अप्राप्य,
बुद्धि और अन्त:करण से भी वो परे,
लेकिन 'वह' है, जो इसे नहीं मानता,
फिर किस प्रकार पा सकता वो 'उसे'[27] ?

'परमात्मा अवश्य है', दृढ़ निश्चय कर,
तत्त्वभाव से ध्यान करे हृदय में उनका,
निश्चयपूर्वक ऐसा प्रयास करनेवाले को,
उनका तात्त्विक रूप अवश्य प्रत्यक्ष होता ।

दृढ़ निश्चयी साधक के हृदय से जब,
सभी कामनाएँ समूल नष्ट हो जातीं,
सदा से मरणधर्मा, वह अमर हो जाता,
परमेश्वर का अनुभव करता भलीभाँति ।

अज्ञान ग्रन्थियाँ कट जाने से वो साधक,
इसी शरीर में रहते अमर हो जाता,
बस इतना ही यह सनातन उपदेश है,
परमतत्त्व को जान वो कृतार्थ हो जाता ।

हृदय की एक-सौ-एक नाड़ियों में से,
कपाल की ओर निकली है सुषुम्ना नाड़ी,
ऊपर के लोकों में जाने का मार्ग है यह,
नाना योनियों में ले जातीं शेष सौ नाड़ी ।

हृदय के अनुरूप अन्तर्यामी परमेश्वर,
अंगुष्ठमात्र रूप में सबके हृदय में बसते,
मूंज से सींक जैसे पृथक वे अमृतस्वरूप,
उसी को विशुद्ध अमृतस्वरूप समझे[28] ।

इस प्रकार उपदेश सुनने के अनन्तर,
इस विद्या और योगविधि को जानकर,
सब विकारों से शून्य, विशुद्ध होकर,
नचिकेता अमर हो गया, ब्रह्म को पाकर ।

नचिकेता के सिवाय दूसरा भी जो कोई,
इस अध्यात्म विद्या को ऐसे ही जानता,
मृत्यु और सभी विकारों से रहित होकर,
वह भी परमतत्त्व को प्राप्त हो जाता ।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

---

[26] अर्थात इस स्थिति में उतार-चढ़ाव होता रहता है अत: परमात्मा को प्राप्त करने की इच्छावाले योगी को निरन्तर योगाभ्यास में दृढ़ता से लगे रहना चाहिए ।

[27] अर्थात केवल दृढ़ विश्वास द्वारा निरन्तर उसे पाने का पूर्वोक्त तरीके से प्रयास करते रहने पर ही उसे पाया जा सकता है ।

[28] यहाँ फिर से इस वाक्य की पुनरावृत्ति उपदेश की समाप्ति और सिद्धांत की निश्चितता को सूचित करती है ।

प्रश्नोपनिषद्

"ॐ प्रश्नोपनिषद्"

"शान्तिपाठ"

हे देवगण ! हम अपने कानों से,
सदा शुभ कल्याणकरी वचन ही सुनें,
नेत्रों से भी दर्शन करें कल्याणमय,
सदा यजन परायण होकर हम रहें ।

सुदृढ़ अंगों और शरीर से हम,
स्तुति भगवान की सदा करते रहें,
परमार्थ के काम आ सके जीवन,
इस प्रकार हम उसका उपभोग करें ।

सुयशी देवराज इन्द्र और सर्वज्ञ पूषा,
हमारे लिए कल्याण का पोषण करें,
शक्तिशाली गरुड़, बुद्धिदाता बृहस्पती,
वे भी हमारे सब तापों की शान्ति करें ।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

प्रथम प्रश्न

"ॐ"

भरद्वाज पुत्र सुकेशा, शिविकुमार सत्यकाम,
गर्गगौत्री सौर्यायणी, कौसल्य आश्वलायन,
विदर्भ के भार्गव व कत्य के प्रपोत्र कबन्धी,
ये छ: प्रसिद्द ऋषि, थे सभी वेदपरायण ।

पिप्पलाद ऋषि के पास गए ये सब,
परब्रह्म के अन्वेषण की आशा लिए,
सोचा निश्चय ही जिज्ञासा शान्त करेंगे,
चले अपने हाथों में वे समिधा[29] लिए ।

उन ऋषियों को अपने पास आया देख,
महर्षि पिप्पलाद ने यह कहा उनसे,
श्रद्धासहित ब्रह्मचर्य का पालन करते,
एक वर्ष तपस्या करते रहो आश्रम में ।

उसके बाद अपनी-अपनी इच्छानुसार,
तुम पूछ सकते हो मनचाहे प्रश्न मुझसे,
यदि उनका उत्तर मैं जानता हूँगा,
तो अवश्य उनका समाधान पाओगे मुझसे ।

एक वर्ष आश्रम में रहने के बाद,
सबसे पहले कबन्धी ने पूछा उनसे,
नाना रूपों में जीव उत्पन्न होते हैं,
किस सुनिश्चित कारण विशेष से ?

महर्षि बोले, प्रजा रचने की इच्छा से,
संकल्परूप तप किया प्रजापति[30] ने,
रयि और प्राण[31] दोनों का जोड़ा बनाया,
नाना प्रकार की प्रजा उत्पन्न वे करें ।

---

[29] हाथ में समिधा ले-अर्थात श्रद्धा और विनयपूर्वक ।

[30] प्रजापति-अर्थात ब्रह्मा; परमात्मा की सृष्टि रचने वाली शक्ति ।

[31] रयि और प्राण-रयि अर्थात स्थूल भूत-समुदाय और प्राण अर्थात सबको जीवन प्रदान करनेवाली समष्टि जीवनी शक्ति । प्राण चेतना है और रयि शक्ति और आकृति ।

यह दिखनेवाला सम्पूर्ण जगत बना है,
प्राण और रयि दोनों के संयोग से,
रयि, स्थूल तत्त्वों का पोषक चन्द्रमा,
चेतना शक्ति प्रधान सूर्य, प्राण से[32] ।

उदित हो सर्वत्र प्रकाश फैलाकर सूर्य,
अपनी किरणों से नवीन स्फूर्ति देता,
जठराग्नि ओर प्राण-अपानादि पञ्चप्राण,
वे भी अंश हैं इसी उदित सूर्य का ।

इस सूर्य तत्त्व को जाननेवाले कहते हैं,
विश्व के समस्त रूपों का केंद्र है सूर्य,
किरणपुंज, प्रकाशमय और तपता हुआ,
जीवन ज्योति का मूल स्रोत है सूर्य ।

बारह महीनों का संवत्सररूप काल ही,
मानों स्वरूप है सृष्टिकर्ता परमेश्वर का,
दक्षिण और उत्तर दो अयन हैं लोग जिनमें,
अनुष्ठान करते इष्ट और पूर्त कर्मों[33] का ।

दक्षिणायन के जो छः महीने हैं,
जिनमें सूर्य दक्षिण की ओर घूमता,
ये मानों इसके दक्षिण अंग हैं,
उत्तरायण के महीने, उत्तर अंग उसका ।

उनमें उत्तर अंग तो मानों प्राण हैं,
सर्वान्तर्यामी स्वरूप परमेश्वर का,
और दक्षिण अंग मानों रयि हैं,
पितृयान नामक मार्ग है जिसका ।

सांसारिक और स्वर्गादि भोगों में आसक्त,
दान, धर्म और यज्ञादि सकाम कर्म करते,
भोगस्वरूप दक्षिण अंग की उपासना कर,
कर्मफल भोग चन्द्रलोक से पुनः लौटते ।

तपपूर्ण ब्रह्मचर्यसहित श्रद्धा के साथ जो,
अध्यात्मविद्या से परमात्मा की खोज कर,
प्राप्त करते उत्तरायण मार्ग से सूर्यलोक को,
आते नहीं उस परमगति से पुनः लौटकर ।

कितने ही तत्त्ववेत्ता सूर्य को बतलाते,
पाँच चरण और बारह आकृतियों[34] वाला,
जल का उत्पादक, स्वर्ग से भी ऊपर,
सबका पिता, सबका कल्याण करने वाला ।

और दूसरे कितने ही लोग बतलाते,
सूर्य के विषय में इस प्रकार से,
छः अरों[35] सात पहियोंवाले रथ में बैठा,
सबको भलिभाँति जाननेवाला उसे ।

प्रत्येक महीना ही प्रजापति है,
कृष्णपक्ष रयि और शुक्लपक्ष प्राण,
शुक्लपक्ष में यज्ञादि कर्त्तव्य कर्म,
कृष्णपक्ष में सकामकर्म अनुष्ठान ।

दिन और रात भी प्रजापति हैं,
रात्रि रयि और दिन है प्राण,
दिन में विषय-भोग अनिष्टकारी,
रात्रि में ब्रह्मचर्य के समान ।

---

[32] अर्थात शरीर में जीवनी शक्ति का सम्बन्ध सूर्य से और मांस, मेद आदि स्थूल तत्वों का सम्बन्ध चन्द्रमा से है

[33] यज्ञादि द्वारा देवताओं का पूजन करना, ब्राह्मण आदि का धन इत्यादि से सत्कार करना, आर्त प्राणियों की सहायता आदि इष्ट कर्म तथा कुआँ, तालाब, बगीचा आदि लोकोपकारी स्मारकों को बनवाना पूर्त कर्म, जिनके द्वारा लौकिक और स्वार्गिक भोगों की चाहना करना ।

[34] पाँच चरण-अर्थात हेमंत और शिशिर ऋतुओं को एक मानकर छः ऋतुएँ; बारह आकृति अर्थात बारह महीने ।

[35] अरे-रथ के पहियों में लगी हुई तीलियाँ ।

अन्न भी प्रजापति है प्रकारान्तर से,
उसी से प्राणियों में पौरुष होता,
समस्त चराचर प्राणी होते उसी से,
प्राणियों का जीवन-आधार होता ।

प्रजा वृद्धि करते संतानोत्पत्ति कर जो,
पुत्र और कन्यारूप जोड़े को उत्पन्न करते,
पर तप, ब्रह्मचर्य और सत्य में प्रतिष्ठित,
वे ही उस परमगति को प्राप्त करते ।

स्वप्न में भी मिथ्याभाषण नहीं करते,
न ही जिनके आचरण में कोई कुटिलता,
राग-द्वेषादी विकारों का सर्वथा अभाव,
उन्हीं को वह नित्य-ब्रह्मलोक मिलता ।

द्वितीय प्रश्न

तब विदर्भदेशीय भार्गव ने महर्षि से पूछा,
प्राणियों के शरीर-धारक कितने हैं देवता,
कौन-कौन उनमें से इसे प्रकाशित करते,
कौन इन सबमें है अत्यन्त श्रेष्ठ देवता ?

महर्षि बोले, आकाश सबका आधार है,
शेष चारों महाभूत[36] उत्पन्न हुए उससे,
ये भी शरीर को धारण किए रहते,
यह स्थूल शरीर बना है इन्हीं से ।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ,
मन और बुद्धि आदि चार अन्तःकरण,
ये चौदह देवता इसके प्रकाशक मानते,
हमारे आश्रित, हम इसे किए हैं धारण ।

प्राण मानता अपने पाँच भागों[37] से,
देह को धारण कर रखा है उसने,
उसके कारण ही शरीर चल रहा है,
जिसे सुरक्षित कर रखा है उसने ।

अपना प्रभाव दिखाने के लिए प्राण,
ऊपर हो, शरीर से निकलने लगे,
प्राण के बाहर निकलने के साथ-साथ,
अन्य सब भी बाहर निकलने लगे ।

प्राण ठहरे तो ठहर गए वे भी,
मधुमक्खियों जैसा हाल था उनका,
रानी उड़ी तो सब मक्खियाँ उड़ चलीं,
रानी बैठी तो फिर बस गया छत्ता ।

तब प्राण की स्तुति करते वे देवता बोले,
अग्नि रूप से तपता है यही प्राण,
सूर्य, मेघ, इन्द्र और वायु भी है यही,
पृथ्वी, रयि और परमात्मा भी है प्राण ।

रथ के पहिए की नाभि में लगे हुए अरे,
जिस प्रकार उस नाभि के आश्रित रहते,
वैसे ही वेदों की ऋचाएँ, मन्त्र, यज्ञादि,
और याज्ञिक आदि प्राण के आश्रित रहते ।

फिर बोले, तू ही प्रजापति है, हे प्राण !
गर्भ में तू, तू ही सन्तान बन जन्मता,
तेरे लिए ही प्राणी अन्न, जलादि लेते,
पञ्चप्राणरूप में तू प्राणियों में चलता ।

---

[36] वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ।

[37] प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान रुपी पाँच प्रकार के प्राण ।

हवि पहुँचानेवाला उत्तम अग्नि है,
पितरों के लिए स्वधा है, हे प्राण !
अथर्वांगिरस आदि ऋषियों द्वारा,
आचरित सत्य भी तू ही है, हे प्राण !

तेजोमय इन्द्र, रूद्र और रक्षक,
तू ही तीनों लोकों का है स्वामी,
अन्तरिक्ष में विचरनेवाला वायु भी तू,
तू ही सूर्य, सब ज्योतिर्गणों का स्वामी ।

मेघरूप होकर पृथ्वीलोक में,
जब तू सब ओर वर्षा करता,
यथेष्ट अन्न होगा यह सोचकर,
आनन्दमग्न हो जाती सारी प्रजा ।

संस्कार बिना भी तू सर्वश्रेष्ठ ऋषि,
सर्वथा शुद्ध, सबको पवित्र करनेवाला,
हम तेरे लिए सामग्री अर्पण करते,
तू आकाशचारी, हमे आश्रय देनेवाला ।

मन, इन्द्रियों आदि में जो व्याप्त है,
उस अपने स्वरूप को कल्याणमय बना ले,
हे प्राण ! तू शरीर से उठकर बाहर न जा,
हम प्रार्थना करते सब मिलकर तुझसे ।

इस प्रत्यक्ष जगत में और स्वर्गादि में,
जो कुछ भी है सब अधीन है तेरे,
माता की तरह तू हमारी रक्षा कर,
हमें कान्ति और बुद्धि तू प्रदान करे ।

तृतीय प्रश्न

उसके बाद आश्वलायन ने पूछा उनसे,
किस प्रकार यह प्राण उत्पन्न होता,
कैसे प्रवेश करता मानव शरीर में,
कैसे विभाजित हो उसमें स्थित रहता ?

एक शरीर से दूसरे में जाते समय,
कैसे यह पहले शरीर से निकलता,
कैसे करता ब्राह्य जगत को धारण,
कैसे मन, इन्द्रिय आदि धारण करता ?

महर्षि बोले, कठिन प्रश्न पूछ रहा तू,
उत्तर तो नहीं देना चाहिए इनका,
पर वेदों का ज्ञाता, श्रद्धालु है तू,
इसलिए उत्तर दे रहा हूँ मैं इनका ।

परमात्मा से उत्पन्न हुआ यह प्राण,
परमात्मा ही इसका उपादान कारण,
जैसे पुरुष की छाया उसके अधीन रहती,
वैसे ही परमात्मा का प्राण पर शासन ।

मरते समय प्राणी के मन में,
कर्मानुसार जैसा उसका संकल्प होता,
वैसा ही शरीर मिलता है उसको,
मन के संकल्प से ही उसका प्रवेश होता ।

जैसे कोई चक्रवर्ती सम्राट अधिकारियों को,
भिन्न-भिन्न गाँव आदि में नियुक्त करता,
वैसे ही अपने अंगरूप अपानादि को प्राण,
देह में विभिन्न कार्यों हेतु नियुक्त करता ।

मुख और नासिका द्वारा विचरता हुआ,
स्वयं तो नेत्र और श्रोत्र में स्थित रहता,
मल-मूत्र, रज-वीर्य और गर्भ को निकालने,
अपान को गुदा और उपस्थ में रखता ।

मध्यभाग नाभि में स्थित समान वायु,
शरीर को पोषण देने को किया नियुक्त,
प्राणाग्नि में हवन किया अन्न का सार,
सारे शरीर को यथायोग्य करता पुष्ट ।

उस अन्न के सारभूत रस से ही,
ये सात ज्वालाएँ उत्पन्न होतीं,
दो नेत्र, कान, नासिकाएँ, एक मुख,
समस्त विषय जो प्रकाशित करतीं ।

हृदय प्रदेश जो जीवात्मा का निवास है,
सौ नाड़ियों का समुदाय है मुख्य रूप से,
सौ-सौ शाखाएँ, 72-72 हजार उपशाखाएँ,
व्यान वायु विचरण करता इन सबमें से ।

इनसे अलग एक और नाड़ी है सुषुम्ना,
जिससे उदान वायु ऊपर की ओर विचरता,
कर्मानुसार पुण्यलोक, या पापयोनियों में,
या पुन: मानव योनि में जन्म दिलाता ।

निश्चय ही सूर्य ही ब्राह्य प्राण है,
जो उदित हो शरीर को पुष्ट करता,
नेत्रसम्बन्धी प्राणों पर अनुग्रह कर,
उन्हें देखने की शक्ति प्रदान करता ।

पृथ्वी में देवता-अपानवायुरूप शक्ति,
आश्रय दिए रखती अपानवायु को,
गुदा और उपस्थ इन्द्रियों की सहायक,
धारण करती इनके ब्राह्य आकार को ।

आकाश समानवायु का ब्राह्य स्वरूप है,
और वायु ब्राह्य स्वरूप है व्यानवायु का,
आकाश शब्द का ज्ञान कराने में सहायक,
वायु त्वचा को ज्ञान कराती स्पर्श का ।

सूर्य और अग्नि का बाहरी तेज-उष्णत्व,
वही ब्राह्य स्वरूप है उदान वायु का,
गरम रखता शरीर के बाहरी अंग-प्रत्यंग,
भीतर की ऊष्मा को भी स्थिर रखता ।

जिसके शरीर से उदान वायु निकल जाता,
फिर उसका शरीर गरम नहीं रहता,
मन में विलीन इन्द्रियाँ साथ ले जीवात्मा,
उदान वायु संग अन्यत्र जा रहता ।

अपने संकल्प के साथ जीवात्मा,
मुख्य प्राण में स्थित हो जाता,
जो तेजयुक्त[38] हो उस संकल्पानुसार,
उसे विभिन्न योनियों में ले जाता ।

इसे जान, जो सुरक्षित रखता प्राण को,
उसकी सन्तान-परम्परा अक्षुण्ण रहती,
जीवन सार्थक बना, अमर हो जाता,
भगवद् चिन्तन में लौ लगी रहती ।

[38] तेज अर्थात उदान वायु ।

प्राण की उत्पत्ति, व्यापकता आदि जान,
उसके रहस्य जो भलिभाँति जान लेता,
प्राप्त कर लेता परब्रह्म परमेश्वर को,
दिव्य संयोग सुख का आनन्द वो लेता ।

चतुर्थ प्रश्न

उसके बाद सौर्यायणी ने पूछा उनसे,
गाढ़ निद्रा के समय कौन देवता सोते,
कौन देवता उस समय जागते रहते,
कौन स्वप्नावस्था में वह स्वप्न देखते ?

यह मनुष्य जब सोता रहता है,
कौन तब यह सुख अनुभव करता,
और सर्वभाव से किसमें स्थित हैं,
सम्पूर्णतया ये सब-के-सब देवता ?

महर्षि बोले, अस्तगामी सूर्य की किरणें,
इस तेजोमण्डल में सारी एकत्र हो जातीं,
और जब सूर्य उदय होता तब वे किरणें,
पुन: पुन: सब ओर प्रकाश फैलाती जातीं ।

ठीक ऐसे ही ये इन्द्रियाँ भी निद्रा में,
परम देव मन में एकत्र हो जातीं,
उस समय देखने, सुनने आदि की,
इस जीवात्मा की शक्तियाँ सो जातीं ।

न सुनता, न देखता, न सूँघता यह,
न यह स्वाद लेता, न स्पर्श करता,
न बोलता, न चलता, न कुछ और,
सो रहा है ये, इसे देखने वाला कहता ।

इस शरीर रूप नगर में, वे बोले,
पाँच प्राणरूप अग्नियाँ जागती रहतीं,
निद्रा को यज्ञ रूप में समझाने के लिए,
पाँच प्राणों को बताया गया पाँच अग्नि ।

प्रसिद्द अपान ही 'गार्हपत्य'[39] अग्नि है,
और व्यान वायु 'दक्षिणाग्नि'[40] कही जाती,
उठा ले जायी जाती जो गार्हपत्य अग्नि से,
मुख्य प्राणरूप आहवनीय[41] अग्नि कहाती ।

मुख्य प्राण का श्वास-प्रश्वास रूप में,
बाहर-भीतर होना इस यज्ञ की आहुतियाँ,
शरीर के पोषक तत्त्व शरीर में पहुँचाती,
समान वायु द्वारा अर्पित ये आहुतियाँ ।

समभाव से कार्य करता समान वायु,
सारे शरीर को उचित पोषण पहुँचाता,
वही मानो हवन करनेवाला होता है,
और मन होता मानो यजमान यज्ञ का ।

---

[39] गार्हपत्य अग्नि-अर्थात गृहस्थ की अग्नि; अग्नि का यह रूप विवाह समारोह के बाद घर में लाया जाता है और पारिवारिक अनुष्ठानों का केन्द्र होता है ।

[40] दक्षिणाग्नि-अग्नि के इस रूप में पितरों को तर्पण दिया जाता है ।

[41] आहवनीय-जिसका यज्ञ में आह्वान किया जाता है; तीन अग्नियाँ मुख्य हैं, एक पूर्वी अग्नि जिसे आहवनीय कहा जाता है और एक वर्गाकार कुण्ड में जलाई जाती है, एक पश्चिमी अग्नि जिसे गार्हपत्य कहा जाता है और एक गोलाकार कुण्ड में जलती है, जो गृहस्थ की अग्नि का प्रतिनिधित्व करती है, और एक दक्षिणाग्नि, जो कुण्ड के दक्षिण में जलाई जाती है ।

उदान वायु इस यज्ञ का अभीष्ट फल,
जो मन को हृदय-गुहा में ले जाता,
निद्रारूप विश्राम सुख वहाँ मिलता उसे,
क्योंकि उसी स्थान में जीवात्मा रहता ।

इस स्वप्न-अवस्था में जीवात्मा ही,
अपनी विभूति का अनुभव करता[42],
जो देखा-सुना, बार-बार देखता-सुनता,
अपना अनुभव फिर-फिर दोहराता रहता ।

स्वप्न में यह जीवात्मा स्वयं ही,
सब कुछ बनकर, स्वयं ही देखता,
इसके अतिरिक्त कोई और न होता,
सारा अनुभव यह स्वयं ही करता ।

देखा, सुना हो या अनदेखा, अनसुना,
विद्यमान हो या चाहे अविद्यमान,
घटी, अनघटी कुछ भी देखता रहता,
सम्भव-असम्भव सब एक समान ।

तेज[43] से मन जब अभिभूत हो जाता,
जीवात्मारूप देवता स्वप्न नहीं देखता,
तब इस मनुष्य शरीर में यह जीवात्मा,
सुषुप्ति का सुख अनुभव करने लगता ।

किसके आश्रित हैं ये, जो पूछा तुमने,
सो पक्षियों सा ही है इनका रैनबसेरा,
पृथ्वी से लेकर प्राण तत्व तक जितने हैं,
सबका परब्रह्म परमेश्वर में ही है बसेरा ।

पञ्च महाभूत और उनकी तन्मात्राएँ[44],
दसों इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों[45] सहित,
अन्तःकरण[46], प्राण, उनसे जीवित शरीर,
ये सब-के-सब परमात्मा के ही आश्रित ।

देखना, छूना, सुनना, सूँघना, स्वाद लेना,
मनन करना, जानना, समस्त कर्म करना,
ये जिस विज्ञान-स्वरूप जीवात्मा के गुण हैं,
उसे भी परमात्मा में ही स्थित जानना ।

उन रंग-रूप, छाया और शरीररहित,
अविनाशी परमात्मा को जो जान लेता,
सर्वज्ञ और सर्वरूप होकर वो मनुष्य,
परब्रह्म-परमेश्वर को प्राप्त कर लेता ।

समस्त प्राण, महाभूत, मन, इन्द्रिय,
और जीवात्मा जिसमें आश्रय लेता,
उस परम अक्षर अविनाशी को जान,
सर्वरूप परमेश्वर में प्रवेश कर लेता ।

---

[42] यह जीवात्मा मन और सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा अपनी विभूति का अनुभव करता है ।

[43] तेज से-अर्थात उदान वायु से जो मन को उर्ध्वगति प्रदान करता है ।

[44] पञ्च महाभूत अर्थात आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी; उनकी तन्मात्राएँ अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ।

[45] दसों इन्द्रियाँ और उनके विषय अर्थात नेत्र इन्द्रिय और देखने में आनेवाली वस्तु भी, श्रोत्र इन्द्रिय और सुनने में आनेवाली वस्तु भी, घ्राणेन्द्रिय और सूँघने में आनेवाली वस्तु भी, रसना इन्द्रिय और उसके विषय, त्वक्-इन्द्रिय और स्पर्श में आनेवाली वस्तु भी, वाक्-इन्द्रिय और बोलने में आने वाले शब्द, दोनों हाथ और पकड़ने में आने वाली वस्तु भी, उपस्थ और उसका विषय, गुदा-इन्द्रिय और उसके द्वारा परित्याग योग्य वस्तु भी, दोनों चरण और गन्तव्य स्थान ।

[46] मन और मनन में आने वाली वस्तु भी, बुद्धि और जानने में आने वाली वस्तु भी, चित्त और चिन्तन में आने वाली वस्तु भी, अहंकार और उसका विषय भी ।

पञ्चम प्रश्न

तब सत्यकाम ने महर्षि से पूछा,
आजीवन ओंकार का ध्यान जो करता,
उस उपासना के बल से किस लोक को,
वो सौभाग्यशाली मनुष्य प्राप्त करता ?

महर्षि बोले, निश्चय ही यह ओंकार,
भिन्न नहीं अपने लक्ष्यभूत परब्रह्म से,
यही उनसे प्रकटा उनका विराटरूप[47] भी,
मनुष्य जो चाहे पा सकता है इससे ।

एक मात्रा से युक्त ओंकार[48] का यदि,
वह उपासक भलिभाँति ध्यान करे,
तो ऋग्वेद की ऋचाएँ शीघ्र दिला देती,
मरने पर श्रेष्ठ मानव जीवन फिर उसे ।

साधक यदि दो मात्रावाले ओंकार[49] की,
स्वर्गलोक को लक्ष्य बना साधना करता,
यजुर्वेद के मन्त्र उसे चन्द्रलोक पहुँचा देते,
जहाँ से फिर वह इस मृत्युलोक लौटता ।

परन्तु जो तीन मात्रावाले ओंकार द्वारा,
परब्रह्म-परमेश्वर की उपासना करता,
सर्प जैसे केंचुली से अलग हो जाता,
निर्विकार हो, वो ब्रह्मलोक पा जाता ।

सामवेद के मन्त्र उसे ले जाते,
तेजोमय सूर्यलोक से ब्रह्मलोक में,
परब्रह्म-परमेश्वर को प्राप्त हो जाता,
विराजमान रहते जो सबके हृदय में ।

'अ', 'उ' और 'म' तीन मात्राएँ ओंकार की,
पृथक-पृथक या संयुक्त प्रयुक्त की गई हों,
जगत के ब्राह्य स्वरूप में ही आसक्त यदि,
जन्म-मरण होता, परब्रह्म नहीं पाता वो ।

एक मात्रा की उपासना से उपासक,
ऋचाओं द्वारा पुन: आता मृत्युलोक में,
दूसरा दो मात्राओं की उपासना करनेवाला,
श्रुतियों द्वारा ले जाया जाता अन्तरिक्ष में ।

पूर्णरूप से ओंकार को उपासने वाले,
सामश्रुति द्वारा जाते ब्रह्मलोक को,
केवल ओंकाररूप अवलम्बन के द्वारा,
ज्ञानीजन पाते परब्रह्म-परमेश्वर को ।

---

[47] अर्थात इस जगत के ऐश्वर्यमय किसी भी अंग को प्राप्त करने की इच्छा से ओंकार की उपासना करने से उसे प्राप्त किया जा सकता है और जो निष्काम भाव से परब्रह्म को लक्ष्य कर इसकी उपासना करता है वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ।

[48] ओंकार की पहली मात्रा ऋग्वेदस्वरूपा है, जिसका 'भू' अर्थात पृथ्वी लोक से सम्बन्ध है । अत: विराट परमेश्वर के भू:, भुव: और स्व:-इन तीन रूपों में से उपासक यदि मृत्यु उपरान्त प्रापणीय भूलोक के ऐश्वर्य की ओर प्रेरित होकर उसकी प्राप्ति के लिए ओंकार की उपासना करता है तो तत्काल पृथ्वीलोक आ जाता है और ऋग्वेद की ऋचाएँ उसे पुन: मनुष्य शरीर में प्रविष्ट करा देती हैं । उस नवीन मनुष्य जन्म में वह तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से सम्पन्न उत्तम आचरण वाला श्रेष्ठ मनुष्य बनकर अतिशय ऐश्वर्य का उपभोग करता है ।

[49] भू: और भुव: अर्थात मनुष्यलोक और स्वर्गलोक इन दोनों की अभिलाषा से उनको लक्ष्य बनाकर ओंकार की उपासना जिससे मनोमय चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है और पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में वापसी ।

षष्ठ प्रश्न

तब भरद्वाज पुत्र सुकेशा ने कहा उनसे,
राजकुमार हिरण्यनाभ ने पूछा था मुझसे,
क्या जानते सोलह कलाओंवाले पुरुष को,
नहीं जानता मैं, मैंने यह कहा उससे ।

यदि जानता होता, तुझे क्यों नहीं बताता,
झूठ बोलनेवाले समूल नष्ट हो रहते,
मेरा उत्तर सुन लौट गया वो राजकुमार,
वही प्रश्न, हे महर्षि ! मैं पूछ रहा आपसे ।

महर्षि पिप्पलाद बोले, हे सुकेशा ! सुनो,
वह परमपुरुष विराजमान हैं भीतर ही,
सोलह कलाओं का समुदाय सम्पूर्ण जगद्रूप,
उनका यह विराट स्वरूप प्रकटा उनसे ही ।

उत्कट अभिलाषा हृदय में जब,
'उसको' पाने की जाग्रत हो जाती,
तब उन परब्रह्म-परमेश्वर की प्राप्ति,
अपने ही हृदय में उसे हो जाती ।

सृष्टि रचने से पहले विचारा परमेश्वर ने,
ऐसा कौन सा तत्त्व ब्रह्माण्ड में डाला जाए,
जिसके निकलने से निकला हुआ हूँगा मैं,
जिसके रहने से मुझे स्थित जाना जाए ?

सबसे पहले रचना की प्राण[50] की उसने,
उसके बाद श्रद्धा[51], फिर पञ्च महाभूत,
फिर अन्त:करण और इन्द्रिय समुदाय,
उसके बाद अन्न, बल और वीर्य रूप ।

फिर संयम के लिए रचा तप को,
उपासना के लिए रचना करी मन्त्रों की,
फिर नाना प्रकार के कर्म रचे उसने,
और उनके फलरूप विभिन्न लोकों की ।

यों सोलह कलायुक्त ब्रह्माण्ड को रचकर,
जीवात्मा सहित परमेश्वर प्रविष्ट हुए इसमें,
मनुष्य तन ब्रह्माण्ड का ही प्रतिरूप है,
सो परमेश्वर वैसे ही विराजमान हैं इसमें ।

जिस प्रकार नदियाँ विलीन हो समुद्र में,
समुद्र के नाम से ही बस जानी जातीं,
वैसे ही प्रलय में परमात्मा में विलीन हो,
ये कलाएँ परमात्मा से तदाकार हो जातीं ।

रथ के पहियों में अरे की तरह,
जिसमें ये सब कलाएँ हैं स्थित,
जानना चाहिए उस परम पुरुष को,
जिससे मृत्यु कर सके न व्यथित ।

यह उपदेश कर महर्षि पिप्पलाद बोले,
यह ही जानता मैं परब्रह्म के विषय में,
उनसे श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है,
सब कुछ कह दिया है मैंने तुम्हें ।

पूजा की उन छहों ऋषियों ने उनकी,
कहा, आप हमारे पूज्य हैं पिता समान,
नमस्कार है आप परम ऋषि को,
अविद्या दूर कर, दिया आपने ज्ञान ।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

---

[50] प्राण अर्थात प्राणरूप सर्वात्मा हिरण्यगर्भ ।

[51] श्रद्धा अर्थात शुभ कर्म में प्रवृत करनेवाली सात्विक बुद्धि ।

मुण्डकोपनिषद्

"ॐ मुण्डकोपनिषद्"

"शान्तिपाठ"

हे देवगण ! हम अपने कानों से,
सदा शुभ कल्याणकरी वचन ही सुनें,
नेत्रों से भी दर्शन करें कल्याणमय,
सदा यजन परायण होकर हम रहें ।

सुदृढ़ अंगों और शरीर से हम,
स्तुति भगवान की सदा करते रहें,
परमार्थ के काम आ सके जीवन,
इस प्रकार हम उसका उपभोग करें ।

सुयशी देवराज इन्द्र और सर्वज्ञ पूषा,
हमारे लिए कल्याण का पोषण करें,
शक्तिशाली गरुड़, बुद्धिदाता बृहस्पती,
वे भी हमारे सब तापों की शान्ति करें ।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

प्रथम मुण्डक

प्रथम खण्ड

"ॐ"

सब देवताओं में सबसे पहले प्रकटे,
जगत के रचियता, लोकों के रक्षक ब्रह्मा,
ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को दिया उन्होंने,
उपदेश सबकी आधारभूत ब्रह्मविद्या का ।

अथर्वा से अंगी ऋषि को मिली यह विद्या,
उनसे भरद्वाज गोत्री स्त्यवह ऋषि को,
परम्परा से मिली इस विद्या का उपदेश,
भारद्वाज ऋषि ने किया अंगिरा ऋषि को ।

अति बृहत् ऋषिकुल के अधिष्ठाता,
शौनक ऋषि ने अंगिरा ऋषि से पूछा,
किसके जान लिए जाने पर, भगवन् !
सब कुछ जाना हुआ जाना जाता ?

अंगिरा ऋषि बोले, ब्रह्मवेत्ता कहते,
दो विद्याएँ हैं जानने के योग्य,
उनमें से एक तो परा विद्या है,
दूसरी अपरा भी है जानने के योग्य ।

अविनाशी परब्रह्म तत्त्व का ज्ञान,
जिस विद्या से होता वो है परा विद्या,
और भोगों के प्राप्ति के साधनों का ज्ञान,
जो विद्या कराती वो है अपरा[52] विद्या ।

---

[52] जिसके द्वारा इस लोक और परलोक सम्बन्धी भोगों तथा उनकी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह अपरा विद्या है । चारों वेद, जो नाना प्रकार के यज्ञों की विधि का और उनके फल का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं इसके अन्तर्गत आते हैं । वेदों का पाठ अर्थात यथार्थ उच्चारण करने की विधि को 'शिक्षा', जिसमें यज्ञयाग आदि की विधि बतलाई गयी है उसे कल्प कहते हैं । वैदिक शब्दों का जो कोष है जिसमें अमुक पद अमुक वस्तु का वाचक है-यह बात कारणसहित बताई गयी है उसे निरुक्त कहते हैं । इस तरह चार वेद और छ: वेदांग

वह जो जानने में, पकड़ने में नहीं आता,
रंग, रूप, नेत्र, कान, हाथ, पैरादि से रहित,
नित्य, सर्वव्यापी, अति सूक्ष्म, अविनाशी,
कारणों का कारण, सर्वत्र उससे परिपूरित ।

मकड़ी जैसे जाल बनाती, निगल जाती,
वैसे ही परमेश्वर रचते, विलीन करते सृष्टि,
जैसे बीजों के अनुरूप ओषधि देती पृथ्वी,
वैसे ही कर्मानुसार जीवों की होती उत्पत्ति ।

जैसे जीवित शरीर से सर्वथा विलक्षण,
केश, रोएँ, नख, उत्पन्न हो बढ़ते रहते,
यह जगत भी समय पर प्रकट हो जाता,
परमेश्वर स्वयं अकर्ता ही बने रहते ।

वृद्धि को प्राप्त होते संकल्परूप-तप से,
जगत की रचना के समय परमेश्वर,
जीवों के कर्मानुसार जो स्फुरणा होती,
उससे ब्रह्मा का रूप ले लेते परमेश्वर ।

प्राणियों की उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाला,
अन्न उत्पन्न होता है प्रजापति ब्रह्मा से,
अन्न से प्राण, मन, पञ्च महाभूत, प्राणी,
कर्म, कर्मफल और समस्त जगत क्रम से ।

वे सम्पूर्ण जगत के कारणभूत परमेश्वर,
सबको जानते बाहर-भीतर पूर्ण रूप से,
उनका ज्ञानमय संकल्प ही तप है उनका,
समस्त जगत, सर्वस्व प्रकट होता उनसे ।

द्वितीय खण्ड

ऋषियों ने जिन कर्मों को देखा,
वे विस्तार से वर्णित हैं वेदों में,
लौकिक उन्नति चाहनेवाले मनुष्य,
लगे रहें शुभ कर्मों को करने में ।

नित्यप्रति अग्निहोत्र करते समय जब,
अग्नि भलिभाँति प्रज्ज्वलित हो जाए,
तब आज्यभाग[53] के स्थान को छोड़कर,
मध्यभाग में आहुतियों को डाला जाए ।

नित्य अग्निहोत्र करनेवाला मनुष्य यदि,
शास्त्रविहित यज्ञ और कर्म[54] नहीं करता,
तो शास्त्र की अवहेलना करने के कारण,
उसे प्राप्त होनेवाला भोग नष्ट हो रहता ।

(शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष) इन दस का नाम अपरा विद्या है ।

[53] यजुर्वेद के अनुसार प्रजापति के लिए मौन भाव से एक आहुति और इन्द्र के लिए 'आधार' नाम की दो घृताहुतियाँ देने के पश्चात् जो अग्नि और सोम देवताओं के लिए पृथक-पृथक दो आहुतियाँ दी जाती हैं उनका नाम 'अज्यभाग' है । 'ॐ अग्नेयस्वाहा' कहकर उत्तर-पूर्वार्ध में और 'ॐ सोमाय स्वाहा' कहकर दक्षिण-पूर्वार्ध में ये आहुतियाँ डाली जाती हैं, इनके बीच में शेष आहुतियाँ डालनी चाहिए ।

[54] शास्त्रविहित यज्ञ-दर्श, पौर्णमास या चातुर्मास्ययज्ञ अर्थात अमावस्या, पूर्णिमा और चार महीनों में पूरा होनेवाला एक श्रौत यागविशेष अथवा शरद और वसन्त ऋतुओं में की जानेवाली नवीन अन्न की इष्टिरूप आग्रयण यज्ञ; कर्म-बलिवैश्वदेव कर्म अर्थात मनुष्येतर व जड़ देवों के अतिरिक्त सभी भूत-प्राणियों के सत्कार हेतु किया यज्ञ ।

काली, कराली, चंचल, सुन्दर लाली लिए,
धूमिल, चिन्गारीयुक्त और देदीप्यमान,
ये सात लपटें, अग्नि की सात जिह्वा सी,
आहुति के लिए तैयार अग्नि का प्रमाण ।

इन लपटों से युक्त प्रज्ज्वलित अग्नि में,
यथाविधि आहुति दे जो अग्निहोत्र करता,
सूर्य किरणें बन आहुतियाँ उसे पहुँचा देती,
जहाँ देवों का स्वामी इन्द्र निवास करता ।

वे आहुतियाँ सूर्य-किरणों के रूप में,
आमंत्रित कर साधक को साथ बुलाती,
शुभकर्मों के फलस्वरूप सुख भोगने,
सत्कारपूर्वक ब्रह्मलोक[55] उसे ले जातीं ।

नित्य, दर्शादि यज्ञरूपी अठारह नौकाएँ,
भवसागर को पार करा नहीं सकती,
मूर्ख लोग जो इन्हें ही सब कुछ मानते,
बारम्बार भव-पीड़ा उन्हें सहनी पड़ती ।

अविद्यारूप सकाम कर्मों में ही जो,
स्वयं को बुद्धिमान समझ अटके रहते,
अंधे को अंधा मानों राह सुझा रहा हो,
मानव जीवनरूपी सुअवसर वो खो बैठते ।

वे समझते कर्त्तव्य-कर्म कर लिया हमने,
भोगों के आगे वे कुछ सोच नहीं पाते,
पुण्योपार्जित लोकों से हटाए जाकर वे,
बारम्बार मृत्यु लोक में गिराए जाते ।

सकाम कर्मों को ही श्रेष्ठ समझकर वो,
परमार्थ साधन का मार्ग नहीं बूझते,
पुण्यों का फल क्षीण हो जाने पर वो,
मानव या पशु-आदि योनियों में जन्मते ।

लेकिन परम-कल्याण साधन के राही,
चाहे वे वन में रहें या वे हों सन्यासी,
शास्त्रविहित कर्त्तव्य निभा, निर्विकार हो,
सूर्यमार्ग से हो, पा लेते लोक अविनाशी ।

अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्य को,
सांसारिक सुखों की भलिभाँति परीक्षाकर,
भोगों से सर्वथा विरक्त हो जाना चाहिए,
उनकी अनित्यता और दुखरूपता समझकर ।

मन में दृढ़ निश्चय कर जिज्ञासु को,
वास्तविक तत्वज्ञान को पाने के लिए,
वेदज्ञ और परमात्मा में स्थित सद्गुरु की,
हाथ में समिधा ले शरण लेनी चाहिए ।

उन ब्रह्मनिष्ठ महात्मा को भी चाहिए,
अपनी शरण में आए ऐसे शिष्य को,
ब्रह्मविद्या का भलिभाँति उपदेश करे,
जिससे परमतत्त्व का ज्ञान मिले उसको ।

---

[55] यहाँ स्वर्गलोक को ब्रह्मलोक कहकर सम्बोधित किया गया है, सम्भवत: यह बताने के लिए कि स्वर्ग के अधिपति इन्द्र भी भगवान के अपर स्वरूप हैं अत: प्रकारान्तर से ब्रह्म ही हैं ।

द्वितीय मुण्डक

प्रथम खण्ड

प्रज्ज्वलित अग्नि से उसी के रंग-रूप की,
जैसे अनगिनत चिनगारियाँ निकलतीं रहतीं,
वैसे ही ब्रह्म से नाना प्रकार के भाव की,
उत्पत्ति और उन्हीं में विलीनता होती रहती ।

समस्त जगत के बाहर और भीतर व्याप्त,
आकार, विकार, प्राण और मन से रहित,
अविनाशी जीवात्मा से अत्यन्त श्रेष्ठ हैं वे,
सर्वथा विशुद्ध, दिव्य पूर्णपुरुष, जगदीश ।

इन्हीं परमेश्वर से उत्पन्न होते प्राण,
अन्तःकरण, इन्द्रियाँ और महाभूत भी,
समस्त प्राणियों को जो धारण करती,
उन्हीं से उत्पन्न होती यह पृथ्वी भी ।

अग्नि मस्तक, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र,
दिशाएँ कान और वेद वाणी है उनकी,
वायु प्राण, जगत हृदय, सबके अन्तरात्मा,
वे परब्रह्म परमेश्वर हैं सबके स्वामी ।

उनसे ही प्रकट हुआ अग्निदेव,
सूर्य समिधा है जिस अग्निदेव की,
सोम उत्पन्न हुआ उन्हीं अग्निदेव से,
और सोम से उत्पत्ति हुई मेघ की ।

मेघों से वर्षा द्वारा हुई ओषधियाँ,
जो आधार हैं प्राणियों में सृजन का,
इस प्रकार उस परमपुरुष से ही,
नियमपूर्वक उत्पन्न हुई सारी प्रजा ।

वेदों की ऋचाएँ, मन्त्र और श्रुतियाँ,
यज्ञादि कर्मों की दीक्षा, दक्षिणाएँ उनकी,
संवत्सररूप काल, अधिकारी यजमान,
उनके फलस्वरूप लोक, सब हुए उससे ही ।

वसु, रूद्र आदि अनेक भेदोंवाले देवता,
साध्यगण, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि,
प्राण, अन्न, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य,
और यज्ञादि विधि सब हुए उससे ही ।

उसी परमेश्वर से हुए सात प्राण[56],
अग्नि की सात लपटें, समिधाएँ[57] सात,
सात हवन[58], प्राणों के लिए सात लोक[59],
निद्रा के समय हृदयगुहा में करते वास ।

समस्त समुद्र, पर्वत और नदियाँ,
समस्त ओषधियाँ और पोषक रस,
इन्हीं परमेश्वर से सब हुए उत्पन्न,
जो आत्मासहित हृदय में रहे बस ।

तप, कर्म और परम अमृतरूप ब्रह्म,
सब कुछ है वही परमपुरुष पुरुषोत्तम,
जान लेता जो इस हृदय में बसे हुए को,
भ्रम से निकल प्राप्त कर लेता ब्रह्म ।

---

[56] सात प्राण-अर्थात जिनमें विषयों को प्रकाशित करने की विशेष शक्ति है, ऐसी सात इन्द्रियाँ-कान, त्वचा, नेत्र, रसना और प्राण तथा वाणी और मन ।

[57] सात समिधाएँ-मनसहित इन्द्रियों की सुनना, स्पर्श करना, देखना, स्वाद लेना, सूँघना, बोलना और मनन करना, ये सात वृत्तियाँ, अर्थात विषय ग्रहण करनेवाली शक्तियाँ ।

[58] सात हवन-अर्थात ब्राह्यविषयरूप समिधाओं का इन्द्रियरूप अग्नियों में निक्षेपरूप क्रिया ।

[59] सात लोक-इन्द्रियों के वासस्थानरूप सात लोक ।

द्वितीय खण्ड

प्रकाशस्वरूप हैं वो सर्वज्ञ परमेश्वर,
सब जीवों के निकटतम, हृदय में छिपे,
इसीलिए उन्हें गुहाचर कहा जाता,
सब-के-सब प्राणी उन्हीं प्रभु में बसे ।

कार्य और कारण, प्रकट और अप्रकट,
सबके द्वारा वरण करने योग्य, सर्वोत्तम,
सब प्राणियों की बुद्धि से परे वे,
सबको जाननेवाले, परब्रह्म पुरुषोत्तम ।

अतिशय देदीप्यमान, सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म,
समस्त लोक और प्राणी स्थित जिनमें,
परम अक्षर, जीवनदाता प्राण, मन, वाणी,
वो जानने योग्य, जानना चाहिए जिन्हें ।

प्रणवरूप महान धनुष को ले उस पर,
उपासना द्वारा तीक्ष्ण किया बाण चढ़ा,
फिर भावपूर्ण चित्त से पूरी तरह खींचकर,
परम पुरुषोत्तम को लक्ष्य कर बाण चला ।

परमेश्वर का वाचक ओंकार धनुष है,
और जीवात्मा बाण है इस रूपक में,
लक्ष्य परमेश्वर, वही साधक वेध सकता,
समर्पित हो, जो तन्मय हो जाए उसमें ।

स्वर्ग, पृथ्वी और उनके बीच का आकाश,
प्राणों सहित मन गुँथा हुआ है जिसमें,
एकमेव उस आत्मरूप परमेश्वर को जानो,
यही अमृत पुल है, जो पार करेगा तुम्हें ।

रथ के पहिए के केंद्र में लगे अरे जैसे,
समस्त नाड़ियाँ एकत्र हैं जिस हृदयदेश में,
वहाँ बसे परमेश्वर का ध्यान 'ॐ' नाम से,
तुम्हारा कल्याण निहित है इस साधन में ।

सब तरह सबको सर्वदा जाननेवाला सर्वज्ञ,
जिनकी यह महान महिमा प्रकट जग में,
वे सर्वआत्मा परमेश्वर, स्वरूप से स्थित हैं,
परमव्योम नामी आकाशरूप ब्रह्मलोक में ।

सबके प्राण, शरीर का नियमन करनेवाले,
मन में व्याप्त होने से मनोमय कहलाते,
हृदयकमल का आश्रय ले रहते शरीर में,
विज्ञान से विद्वान उन्हें प्रत्यक्ष कर लेते ।

कार्य और कारणस्वरूप परब्रह्म को,
तत्त्व से भलीभाँति जान लेने पर,
हृदय की गाँठ खुल, संशय कट जाते,
सभी शुभाशुभ कर्म हो जाते नष्ट ।

वे निर्विकार, अवयवरहित अखण्ड परमात्मा,
विराजमान हैं प्रकाशमय परमधाम में,
सर्वथा विशुद्ध, सब ज्योतियों के ज्योति,
आत्मज्ञानी महात्माजन ही जानते उन्हें ।

सूर्य, चन्द्र, तारागण न बिजलियाँ,
अग्नि के लिए तो कहना ही क्या,
उसीके प्रकाश से ये सब हैं प्रकाशित,
जो कुछ भी है सब है अंश उसी का ।

ऊपर, नीचे, दाएँ, बाएँ, आगे, पीछे,
सभी ओर फैला अमृतस्वरूप परब्रह्म,
विश्वब्रह्माण्ड के रूप में, कण-कण में,
व्याप्त हो रहा सर्वत्र वो परिपूर्ण ब्रह्म ।

तृतीय मुण्डक

प्रथम खण्ड

एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर दो पक्षी,
मित्र भाव से साथ-साथ में रहते,
एक सुख-दुःखरूप फल का स्वाद लेता,
दूसरा खाता नहीं, बस रहता देखते ।

इस शरीररूपी समान वृक्ष पर जीवात्मा,
आसक्ति में डूबा, दीन बनकर रहता,
परमेश्वर की अहैतुकी कृपा जब होती,
उनकी महिमा जान, शोकरहित हो रहता ।

सबके शासक, ब्रह्मा के भी रचयिता,
परमेश्वर का साक्षात् जब वो कर लेता,
सब पाप-पुण्य कर्मों का समूल नाश कर,
निर्मल हो, सर्वोत्तम समता वो पा लेता ।

ये सर्वव्यापी परमेश्वर ही प्राण हैं सबके,
सब प्राणियों में प्रकाश हो रहा उन्हीं का,
वे ही प्रकाशित हो रहे उन प्राणियों द्वारा,
यह जान ज्ञानी कभी अभिमान न करता ।

वर्णाश्रम अनुकूल कर्म करता हुआ वो,
अन्तर्यामी भगवान में ही क्रीड़ा करता,
ब्रह्मवेत्ताओं में अति श्रेष्ठ भक्त वो,
परमात्मा में ही रमण करता रहता ।

हृदय में विराजमान, प्रकाशरूप परमात्मा,
निर्मल साधक द्वारा ही देखा जा सकता,
सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और यथार्थ ज्ञान,
इनके द्वारा ही उसे पाया जा सकता ।

सत्य ही विजयी होता, झूठ नहीं,
क्योंकि वह देवयान मार्ग है सत्य का,
पूर्णकाम ऋषिलोग गमन करते इससे,
जहाँ धाम है परब्रह्म पुरुषोत्तम का ।

दिव्य, अचिन्त्यस्वरूप, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर,
दूर से भी अति दूर और समीप से समीप,
देखनेवालों के भीतर हृदयरूप गुफा में छिपे,
वे परमात्मा अपने भक्तों के अति समीप ।

नेत्र, वाणी या किसी अन्य इन्द्रिय से,
ग्रहण करने में नहीं आता परमात्मा,
तप या कर्म से नहीं, निर्मल हृदय से,
ध्यान करने से ही मिलता परमात्मा ।

प्राण चेष्टायुक्त कर रहे जिस शरीर को,
उसी में सूक्ष्म आत्मा मन से जाना जाता,
जीवों का सम्पूर्ण चित्त व्याप्त है प्राणों से,
जिसकी शुद्धि से आत्मा सामर्थ्य पाता ।

जिस लोक या भोग का चिन्तन करता,
विशुद्ध अन्तःकरणवाला उसको पा जाता,
सो एश्वर्य चाहनेवाले को चाहिए वो खोजे,
शरीर से भिन्न आत्मा का ज्ञाता महात्मा ।

द्वितीय खण्ड

निष्काम भाव से परमपुरुष की उपासना,
ज्ञान कराती उनके विशुद्ध ब्रह्मधाम का,
सम्पूर्ण जगत स्थित हुआ लगता जिसमें,
जिसे जानकर साधक फिर नहीं जन्मता ।

भोगों की कामना जिनके मन में रहतीं,
उन भोगों के उपयुक्त लोक में वे जन्मते,
पर भोगों से उबर जो पूर्णकाम हो चुके,
वे विशुद्ध मनवाले फिर नहीं जन्मते ।

सुनने-सुनाने या बुद्धि से नहीं मिलते,
स्वयं स्वीकारते, उसे मिलते परमात्मा,
उसके लिए अपने यथार्थ स्वरूप को,
स्वयं ही उस पर प्रकट करते परमात्मा ।

उपासना-बल बिना मिलते नहीं वो,
प्रमाद से न लक्षणरहित तप से मिलते,
किन्तु पूर्वोक्त उपायों से प्रयत्न द्वारा,
साधक ब्रह्मधाम में प्रविष्ट हो रहते ।

उपर्युक्त प्रकार से आसक्तिरहित ऋषिगण,
परमात्मा को पाकर परम शान्त हो जाते,
अपनेआप को परमात्मा से संयुक्त कर वे,
परमात्मा में ही पूर्णतया प्रविष्ट हो जाते ।

वेदान्त के सम्यक ज्ञान द्वारा जिन्होंने,
जान लिया उसके अर्थस्वरूप ब्रह्म को,
और आसक्ति त्याग जो विशुद्ध हो चुके,
संसार बन्धन से मुक्त हो जाते सदा को ।

उनकी पन्द्रह कलाएँ[60] और सम्पूर्ण देवता[61],
स्थित हो जाते अपने अभिमानी देवों में,
समस्त कर्म और विज्ञानमय जीवात्मा,
सब एक हो जाते अविनाशी ब्रह्म में ।

जैसे बहती नदियाँ नाम-रूप छोड़कर,
समुद्र से मिल उसमें विलीन हो जातीं,
वैसे ही ज्ञानी-महात्मा नाम-रूपरहित हो,
परब्रह्म-परमात्मा की कर लेते प्राप्ति ।

परब्रह्म परमात्मा को जो कोई जान लेता,
वो ब्रह्मवेत्ता स्वयं भी ब्रह्म ही हो जाता,
सन्तान भी ब्रह्म न जाननेवाली नहीं होती,
सब पाप-ताप से छूट वो अमर हो जाता ।

ऋचा कहती ब्रह्मविद्या बतलाएँ उन्हें ही,
जो निष्काम भाव से वर्णाश्रम धर्म निभाते,
वेदार्थ जानते, ब्रह्मचर्य का पालन करते,
जिज्ञासु हैं और परमेश्वर को उपासते ।

महर्षि अंगिरा ने शौनक ऋषि को पहले,
इस सत्यविद्या का उपदेश देते कहा था,
जिसने ब्रह्मचर्यव्रत का पालन न किया हो,
वह इसका अभिप्राय समझ नहीं सकता ।

नमस्कार इन परम ऋषियों को,
सब परम ऋषियों को नमस्कार है,
पुन: पुन: नमस्कार है ऋषियों को,
परम ऋषियों को पुन: नमस्कार है ।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

---

[60] पन्द्रह कलाएँ-श्रद्धा, आकाशादि पञ्च महाभूत, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक तथा नाम ।

[61] इन्द्रियों के सब देवता ।

माण्डूक्योपनिषद्

"ॐ माण्डूक्योपनिषद्"

"शान्तिपाठ"

हे देवगण ! हम अपने कानों से,
सदा शुभ कल्याणकरी वचन ही सुनें,
नेत्रों से भी दर्शन करें कल्याणमय,
सदा यजन परायण होकर हम रहें ।

सुदृढ़ अंगों और शरीर से हम,
स्तुति भगवान की सदा करते रहें,
परमार्थ के काम आ सके जीवन,
इस प्रकार हम उसका उपभोग करें ।

सुयशी देवराज इन्द्र और सर्वज्ञ पूषा,
हमारे लिए कल्याण का पोषण करें,
शक्तिशाली गरुड़, बुद्धिदाता बृहस्पती,
वे भी हमारे सब तापों की शान्ति करें ।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

"ॐ"

लक्षित करता सम्पूर्ण जगत की महिमा
'ॐ', जो वाचक अविनाशी परब्रह्म का,
जो हो चुका, हो रहा या होने वाला है,
और इनसे अतीत भी जो कुछ, उसका ।

यह जगत ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं,
यह उसका शरीर, वो अन्तर्यामी आत्मा,
चार चरणोंवाला है परब्रह्म परमेश्वर,
इस दृश्य जगत में परिपूर्ण परमात्मा ।

जागते में शरीर का अभिमानी जीवात्मा,
जैसे उन्नीस मुखों से[62] विषयों को भोगता,
वैश्वानररूप[63] पहला पाद परमेश्वर का,
वैसे ही स्थूल जगत का ज्ञाता व भोक्ता ।

स्वप्न सा सूक्ष्म जगत स्थान जिसका,
ज्ञान संकल्पमय सूक्ष्म जगत में व्याप्त,
वह पूर्वोक्त सात अंग, उन्नीस मुखवाला,
तैजसरूप[64] उस परमात्मा का दूसरा पाद ।

जिस अवस्था में सोया हुआ मनुष्य,
कामना नहीं करता किसी भोग की,
न ही जब वह कोई स्वप्न देखता,
वह अवस्था कही जाती है सुषुप्ति ।

ऐसी सुषुप्ति की भाँति प्रलय अवस्था,
वही जिसका शरीर, जो एकरूप हो रहा,
घनीभूत विज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप जो,
आनन्द का भोक्ता, वही पाद तीसरा ।

---

[62] जीवात्मा सिर से लेकर पैर तक सात अंगों से युक्त होकर विषयों के उपभोग के द्वाररूप दस इन्द्रिय, पाँच प्राण, चार अन्त:करण-इस प्रकार इन उन्नीस मुखों से विषयों का उपभोग करता है और उसका ज्ञान बाहर (दृश्यमान जगत) की ओर फैला रहता है ।

[63] सात लोकरूप सात अंगों और समष्टि इन्द्रिय, प्राण और अन्त:करण-इस प्रकार उन्नीस मुखों से युक्त इस स्थूल जगत रूप शरीर का आत्मा-जो सम्पूर्ण प्राणियों का प्रेरक और स्वामी होने के कारण इस स्थूल जगत का ज्ञाता और भोक्ता है, जिसकी अभिव्यक्ति इस ब्राह्य स्थूल जगत में हो रही है-वह सर्वरूप वैश्वानर ।

[64] तैजस-प्रकाश का स्वामी सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ-समस्त ज्योतियों को ज्योति, सबको प्रकाशित करनेवाला ।

तीन पादों के रूप में वर्णित परमेश्वर,
वे सर्वज्ञ, सभी ईश्वरों के हैं ईश्वर,
उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का स्थान,
सम्पूर्ण जगत का कारण, परमेश्वर ।

जिसकी प्रज्ञा न भीतर न बाहर को,
न दोनों ओर, न ज्ञाता, न अनजान,
अदृष्ट, अचिन्त्य, पूर्णतया अग्राह्य,
कोई लक्षण न उसकी कोई पहचान ।

निर्गुण, निर्विकार, निर्विशेष स्वरूप,
वही चौथा पाद परब्रह्म परमेश्वर का,
सर्वथा शान्त, कल्याणमय, अद्‌वितीय,
उन्हें जानना, सच्चा लाभ जीवन का ।

इन चार पादोंवाले परब्रह्म परमात्मा के,
प्रणव में 'अ', 'उ' और 'म' हैं तीन पाद,
जिस प्रकार ओंकार से अलग नहीं मात्राएँ,
स्वयं परमात्मा का ही रूप हैं उनके पाद ।

परमेश्वर का पहला पाद वैश्वानर जैसे,
जगतरूप में प्रकटा और व्याप्त उसमें,
ऐसे ही ओंकार की पहली मात्रा 'अ'कार,
शब्द मात्र में व्याप्त, आदिरूप उनमें ।

'अ'कार और वैश्वानर की एकता के कारण,
'अ' ही पहला पाद पूर्णब्रह्म परमेश्वर का,
जो मनुष्य जान लेता इस एकता को ऐसे,
सब भोगों का पा, आदि बन जाता सबका ।

'अ' से उत्कृष्ट और 'अ' और 'म' के बीच,
'अ' और 'म' से घनिष्ठ सम्बन्ध 'उ' का,
वैसे ही जैसे 'तैजस' वैश्वानर से उत्कृष्ट,
स्थूल व कारण जगत से सम्बन्ध उसका ।

'उ' की और तैजस की इस समानता से,
'उ' दूसरा पाद है पूर्णब्रह्म परमेश्वर का,
ज्ञान परम्परा उन्नत करता इसका ज्ञाता,
सन्तान भी उसकी पा लेती यह पात्रता ।

तीसरी मात्रा 'म' बनी है 'मा' धातु से,
माप लेना, समझ लेना अर्थ जिसका,
'अ' और 'उ' के बाद उच्चारित होने से,
'म' में ही समा जाता है माप उनका ।

'म' उच्चारण के साथ मुख बन्द होने से,
'अ' और 'उ' दोनों उसमें विलीन हो जाते,
जिस प्रकार सुषुप्ति की अवस्था में उसमें,
स्थूल और सूक्ष्म जगत विलीन हो जाते ।

'म' और प्राज्ञ[65] की समानता के कारण,
'म'रूपी मात्रा है तीसरा पाद ब्रह्म का,
इसे जान परमेश्वर का चिन्तन करनेवाला,
सर्वत्र परमेश्वर का ही दृष्टा बन जाता ।

इसी प्रकार ओंकार के निराकार स्वरूप की,
निर्गुण-निराकार चौथे पाद से है समानता,
नाम और नामी की यों एकता जानकर,
नाम-जप का तत्पर साधक तद्रूप हो जाता ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

[65] प्राज्ञ-अर्थात सुषुप्तिस्थानीय कारण जगत का अधिष्ठाता प्राज्ञ ।

ऐतरेयोपनिषद्

"ॐ ऐतरेयोपनिषद्"

"शान्तिपाठ"

हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन् !
मेरे मन-वाणी दोनों एक हो जाएँ,
ऐसा न हो मैं वाणी से कुछ कहूँ,
और मेरा मन कहीं और खो जाए ।

मेरे संकल्प और वचन दोनों,
विशुद्ध होकर एक हो जाएँ,
अपनी योगमाया का पर्दा हटाकर,
आप मेरे लिए प्रकट हो जाएँ ।

हे मेरे मन और वाणी ! तुम दोनों बनो,
मेरे लिए वेदविषयक ज्ञान को लानेवाले,
मेरा ग्रहण किया ज्ञान कभी भूले न मुझे,
दिन-रात लगा रहूँ मैं अध्ययन करने में ।

सत्य और उत्तम ही मेरे शब्द हों,
वे परब्रह्म परमेश्वर मेरी रक्षा करें,
ब्रह्मविद्या सिखानेवाले मेरे आचार्य,
उनकी भी और मेरी भी वो रक्षा करें ।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

प्रथम अध्याय

प्रथम खण्ड

"ॐ"

इस जगत के प्रकट होने से पहले,
एकमात्र परमात्मा ही था, दूसरा नहीं,
तब आदि में संकल्प किया उसने,
रचना करूँ मैं भिन्न-भिन्न लोकों की ।

यह सोच सृष्टि की रचना करना,
प्रारम्भ किया परब्रह्म परमेश्वर ने,
अम्भ, मरीचि, मर और आप नामक,
इन सब लोकों की रचना की उसने ।

द्युलोक और ऊपर के लोक[66]-'अम्भ',
अन्तरिक्ष जाना जाता 'मरीचि' नाम से,
यह मृत्युलोक पृथ्वी कही गयी 'मर',
नीचे के लोक[67] कहे गए 'आप' नाम से ।

इस तरह लोकों की रचना के अनन्तर,
लोकपालों की रचना करूँ सोचा उसने,
सो जल से हिरण्यमय पुरुष[68] को निकाल,
अंगों सहित उसे मूर्तिमान बनाया उसने ।

उसके अंग-उपांगों को व्यक्त करने के लिए,
संकल्परूप तप किया परब्रह्म परमेश्वर ने,
उस तप के फलस्वरूप अण्डे सा फूटकर,
मुख-छिद्र निकला उस हिरण्यमय पुरुष में ।

---

[66] ऊपर के लोक अर्थात स्वर्गलोक से ऊपर मह:, जन:, तप: और सत्यलोक ।

[67] नीचे के लोक अर्थात पृथ्वी के नीचे-भीतरी भाग में स्थित स्थूल पातालादि लोक जिन्हें 'आप' (जल) नाम से सम्बोधित किया गया है ।

[68] हिरण्यमय पुरुष अर्थात ब्रह्मा की रचना की, जो कमल-नाल अर्थात जल से उत्पन्न हुए ।

उस मुख से उत्पन्न हुई वाक् इन्द्रिय,
अग्नि, उसका अधिष्ठाता देवता उससे,
फिर दोनों नासिका छिद्र, उनसे प्राणवायु,
तब वायु देवता उत्पन्न हुए प्राणों से ।

दोनों आँखों के छिद्र, उनसे नेत्र इन्द्रिय,
फिर सूर्य देवता प्रकट हुए क्रम से,
दोनों कानों के छिद्र, उनसे श्रोत्र इन्द्रिय,
फिर दिशाएँ प्रकटी श्रोत्र इन्द्रिय से ।

इसके बाद त्वचा, त्वचा से रोम,
ओषधि और वनस्पतियाँ रोम से,
फिर हृदय, उससे मन का आविर्भाव,
इसके बाद चन्द्रमा प्रकटे मन से ।

फिर नाभि, नाभि से अपान वायु,
और उससे मृत्यु देवता हुए उत्पन्न,
उसके बाद लिंग, लिंग से वीर्य,
और वीर्य से जल हुआ उत्पन्न ।

द्वितीय खण्ड

परमात्मा द्वारा रचे वे सब देवता,
इस संसाररूप महासमुद्र में आ पड़े,
भूख-प्यास से युक्त हुए वे देवता,
आहार हेतु कोई स्थान माँगने लगे ।

परमात्मा उनके लिए लाए गौ का शरीर,
देवताओं ने कहा हमारे लिए पर्याप्त नहीं,
फिर परमात्मा लेकर आए घोड़े का शरीर,
उसे भी देवताओं ने कहा यह यथेष्ट नहीं ।

तब परमात्मा लाए मनुष्य का शरीर,
देवताओं ने कहा यह रचना बनी है सुन्दर,
परमात्मा ने तब उन देवताओं से कहा,
आश्रय लेलो अपने योग्य स्थानों के भीतर ।

वाक् इन्द्रिय बनकर अग्नि देवता,
प्रविष्ट हो गए उस शरीर के मुख में,
वायु देवता रूप लेकर प्राणों का,
प्रविष्ट हो गया नासिका छिद्रों में ।

सूर्य देवता नेत्र इन्द्रिय बनकर,
प्रविष्ट हुआ आँखों के गोलों में,
श्रोत्र इन्द्रिय बन दिशाओं के देवता,
प्रविष्ट हो गए उसके कानों में ।

ओषधि और वनस्पतियों के देवता,
रोएँ बनकर प्रविष्ट हो गए त्वचा में,
इसी प्रकार चन्द्रमा मन बनकर,
प्रविष्ट हो बैठ गए उसके हृदय में ।

मृत्यु देवता अपान वायु बनकर,
प्रविष्ट हो गया उसकी नाभि में,
अन्त में जल का अभिमानी देवता,
वीर्य बन प्रविष्ट हो गया लिंग में ।

तब भूख और प्यास ये दोनों भी,
परमात्मा से अपना स्थान लगी माँगने,
परमात्मा बोले, भागीदार बना देता हूँ,
देवताओं संग हवि ग्रहण करने में तुम्हें ।

सो इन्द्रियाँ जब विषय-भोग ग्रहण करतीं,
उस देवता के भाग में ये भी हिस्सा पातीं,
तृप्ति के साथ उस इन्द्रिय के देवता की,
क्षुधा और पिपासा भी शान्ति पा जातीं ।

तृतीय खण्ड

इन सबकी रचना होने पर परमेश्वर,
सोचने लगे इनके निर्वाह के लिए,
भूख-प्यास लगी है इनके साथ,
सो अन्न की रचना करूँ इनके लिए ।

इस प्रकार से विचार कर परमेश्वर ने,
पञ्च महाभूतों में क्रिया उत्पन्न की,
जिससे उपजा उनका स्थूल रूप अन्न,
देवताओं के लिए बना भोग्य सामग्री ।

मुझे खानेवाला मेरा विनाशक ही है,
यह सोच अन्न लगा भागने वहाँ से,
तब मनुष्य रूप में जन्में जीवात्मा ने,
पकड़ना चाहा उस अन्न को वाणी से ।

पर वाणी से उसे वो पकड़ न पाया,
लेकिन अगर ऐसा हो गया होता,
तो वाणी से अन्न का नाम लेते ही,
तुरन्त ही उसका पेट भर गया होता ।

तब प्राण से पकड़ना चाहा उसने,
पर प्राण से भी उसे पकड़ न सका,
गर प्राण से पकड़ में आ जाता अन्न,
सूँघने से ही पेट भर जाता उसका ।

चक्षु इन्द्रिय से जो पकड़ना चाहा,
उससे भी अन्न को पकड़ न सका,
गर चक्षु से पकड़ में आ जाता अन्न,
तो देखने से ही वो तृप्ति पा जाता ।

ऐसे ही श्रोत्र इन्द्रिय भी हुई विफल,
उनसे भी वो पकड़ न पाया अन्न को,
गर कानों से वो पकड़ पाता अन्न,
तो सुनकर ही तृप्ति मिल जाती उसको ।

फिर त्वचा, मन और उपस्थ द्वारा,
पकड़ना चाहा उसने अन्न को,
उनसे भी वो पकड़ सका न अन्न,
वरना उनसे ही तृप्त हो जाता वो ।

अन्त में उस पुरुष ने अन्न को,
ग्रहण करना चाहा अपान वायु द्वारा,
सफल हुआ वो इस प्रयास में,
अन्न ग्रहण करने में मुख-द्वार द्वारा ।

बाहर से भीतर प्रश्वास के रूप में,
अपान वायु अन्न को ग्रहण कर ले जाता,
जीवन रक्षक के रूप में प्रसिद्द प्राण,
इसी अपान वायु नाम से जाना जाता ।

तब परमेश्वर ने सोचा यह मनुष्यरूप पुरुष,
क्या मेरे बिना अपना कार्य कर सकेगा,
यह सोच परमेश्वर विचार करने लगे,
किस मार्ग से इसमें प्रवेश उचित रहेगा ?

तब मनुष्य शरीर का ब्रह्मरन्ध्र चीर,
परमात्मा ने प्रवेश किया उस शरीर में,
वही यह ब्रह्म प्राप्ति का द्वार है,
विदृती[69] नाम से जो प्रसिद्द सब में ।

---

[69] विदृती अर्थात विदीर्ण किया हुआ, जिसे छेदकर परमात्मा ने इस सजीव मनुष्य शरीर में प्रवेश किया और जो आनन्दस्वरूप अर्थात परमात्मा को प्राप्त करानेवाला है ।

तीन स्थान हैं परमात्मा की प्राप्ति के,
एक हृदयाकाश, दूजा आकाशरूप परमधाम,
जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्तिरूपी अवस्थावाला,
सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है उनका तीसरा स्थान ।

मनुष्यरूप में उत्पन्न हुए उस पुरुष ने,
भौतिक जगत को देखा चारों ओर से,
सोचने लगा यहाँ दूसरा और कौन है,
यह सब तो उत्पन्न हुआ नहीं मुझसे ?

तब हृदय में विराजे अन्तर्यामी पुरुष को,
देखा उसने सर्वव्यापी परब्रह्मरूप में,
आनन्द से भर कहने लगा, अहोभाग्य !
परब्रह्म परमात्मा को देख लिया मैंने ।

यों परमात्मा को प्रत्यक्ष देखने के कारण,
'इदन्द्र'[70] नाम से जाने जाने लगे परमात्मा,
फिर भी देवताओं के परोक्षभाव[71] के कारण,
'इन्द्र' नाम से जाने जाते हैं परमात्मा ।

द्वितीय अध्याय

प्रथम खण्ड

यह संसारी जीव पहले पहल,
पिता के शरीर में प्रकट होता,
सम्पूर्ण अंगों का तेजरूप सार,
माता के गर्भ में सिंचित होता ।

माता के गर्भ में प्रवेश करना,
यह पहला जन्म होता जीव का,
माता के शरीर में आया वह गर्भ,
माता का ही आत्मभाव[72] पा रहता ।

माता उसका पालन पोषण करती,
कोई पीड़ा उससे नहीं पाती माता,
भाररूप नहीं लगता वह माता को,
सब तरह उसकी रक्षा करती माता ।

वह गर्भवती माता सब तरह से,
पालन पोषण पाने का पात्र होती,
जन्म के बाद पिता संस्कारों[73] द्वारा,
सब तरह से उसकी करता उन्नति ।

वह इन लोकों को बढ़ाने के द्वारा,
स्वयं अपनी ही उन्नति करता,
ऐसे ही ये लोक हुए हैं विस्तारित,
यही दूसरा जन्म है इस जीव का ।

पिता का ही आत्मस्वरूप पुत्र जब,
इस प्रकार सब तरह से योग्य हो जाता,
पिता गृहस्थ का दायित्व[74] उस पर छोड़,
उसे प्रतिनिधि बना, कृत-कृत्य हो जाता ।

तदन्तर आयु पूरी होने पर मनुष्य,
जब शरीर छोड़ यहाँ से विदा हो जाता,
तब कर्मानुसार 'तीसरा' जन्म लेता वो,
ऐसे चलती रहती यह जन्म परम्परा ।

---

[70] इदन्द्र-इदम् द्रः-अर्थात 'इसको मैंने देख लिया ।

[71] देवता लोग मानों छिपाकर ही कुछ कहना पसंद करते हैं इसलिए इदन्द्र के स्थान पर परमात्मा को इन्द्र कहकर पुकारते हैं ।

[72] आत्मभाव-अर्थात वह माता के शरीर का ही अंग बन जाता है ।

[73] जातकर्म आदि संस्कार और नाना प्रकार के उपचारों से उस कुमार को अभ्युदयशील बनाता है और जब तक वह सर्वथा योग्य नहीं बन जाता, सब तरह से उसका पालन-पोषण करता है ।

[74] अग्निहोत्र, देवपूजा और अतिथि-सेवा आदि वैदिक और लौकिक शुभकर्मों का दायित्व पुत्र को सौंप देना ।

गर्भ में रहते हुए ही वामदेव ऋषि को,
यह उपरोक्त ज्ञान प्राप्त हो गया था,
सो उन्होंने माता के उदर में रहते-रहते,
जन्म-मृत्यु का रहस्य जान लिया था ।

जन्म होते अन्त:करण और इन्द्रियों के,
आत्मा तो वास्तव में निसंग ही रहता,
इस रहस्य को समझने से पहले मुझे,
सैंकड़ों पिंजरों ने अवरुद्ध कर रखा था ।

उन शरीररूपी पिंजरों में मेरी,
ऐसी दृढ़ अहंता हो गयी थी,
कि उनसे छूटना मेरे लिए,
एक असम्भव बात हो गयी थी ।

ज्ञानरुपी बल के वेग से बाज पक्षी सा,
मैं उन्हें तोड़, अलग हो गया हूँ उनसे,
शरीरों की अहंता से सदा की मुक्ति मिली,
अब मेरा कोई सम्बन्ध रहा न उनसे ।

तत्ववेत्ता वामदेव शरीर छूटने पर,
उर्ध्वगति द्वारा पहुँच गए परमधाम,
सर्वथा आप्तकाम होकर अमर हो गए,
जन्म-मृत्यु चक्र से पाया पूर्ण विश्राम ।

तृतीय अध्याय

प्रथम खण्ड

हमलोग जिसकी उपासना करते हैं,
कौन है वो आत्मा,[75] जो देखता, सुनता,
गन्ध सूँघता, वाणी को स्पष्ट बोलता,
और पृथक-पृथक स्वादों को जो चखता ?

यह अन्त:करणरूपी हृदय ही मन है,
अनेक तरह की शक्तियाँ हैं इस मन की,
जानना, समझना, देखना, अनुभव करना,
धैर्य रखना, तत्क्षण पहुँच जाना कहीं भी ।

निश्चय करना, मनन करना, याद रखना,
संकल्प, मनोरथ, प्राण, इच्छा-शक्ति आदि,
ये सब परमसत्ता का बोध करानेवाले लक्षण,
ये सब शक्तियाँ, परमात्मा की ही शक्ति ।

समस्त देवता, पञ्च महाभूत, सब प्राणी,
जो कुछ भी प्रकट हो रहा जगतरूप में,
सब परमात्मा से ही अपना सामर्थ्य पाते,
सब स्थित है उसी उपास्यदेव ब्रह्म में ।

यों प्रज्ञानस्वरूप परमेश्वर को जाननेवाला,
शरीर त्यागने पर परमधाम पा जाता,
ब्रह्म के साथ परम आनन्द प्राप्त कर,
सदा के लिए आवागमन से छूट जाता ।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

[75] पहले और दूसरे अध्याय में वर्णित दो आत्माओं (जीवात्मा और परमात्मा) में से कौनसी आत्मा ?

तैत्तिरीयोपनिषद्

"ॐ तैत्तिरीयोपनिषद्"

शिक्षा-वल्ली

"शान्तिपाठ"

प्रथम अनुवाक

"ॐ"

कल्याणकारी हों हमारे लिए मित्र, वरुणादि,
इन्द्र और बृहस्पति शान्ति करनेवाले हों,
विशाल डगोंवाले विष्णु कल्याण करें हमारा,
हम नमस्कार करते अन्तर्यामी ब्रह्म को ।

हे सबके प्राणस्वरूप वायुमय परमेश्वर !
तुम्हीं सभी प्राणियों के प्रत्यक्ष ब्रह्म हो,
ब्रह्म, ऋतु और सत्य नाम से पुकारते,
क्योंक तुम्हीं सबके अधिष्ठाता देव हो ।

सत्-आचरण, भाषण और सत्य विद्या,
ग्रहण करने की शक्ति परमेश्वर मुझे दें,
और इस जन्म-मरणरूप संसार चक्र से,
हे परब्रह्म-परमेश्वर आप मेरी रक्षा करें ।

सत्य का उपदेश दे प्रचार करने की,
मेरे आचार्य को शक्ति प्रदान करें,
रक्षा करें मेरे आचार्य की हे परमेश्वर !
मेरी और वक्ता आचार्य की रक्षा करें ।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।

द्वितीय अनुवाक

अब वेद पाठन के विषय में कहेंगे हम,
सही-सही उच्चारण हो वेद मन्त्रों का,
कहाँ किस स्वर का[76] प्रयोग किया जाए,
ध्यान रखा जाए सन्धि और मात्रा का ।

स्पष्ट उच्चारण हो सभी वर्णों का,
शब्द के भाव का ध्यान रखा जाए,
स्वर-भेद से मन्त्र का अर्थ बदल जाता,
व्याकरण के नियमों को निभाया जाए ।

तृतीय अनुवाक

आचार्य और शिष्य हम दोनों का,
यश और ब्रह्मतेज एक साथ बढ़े,
इस प्रकार शुभ इच्छा प्रकट कर,
हम संहिताविषयक उपनिषद कहें ।

वर्णों की संधि को कहा जाता संहिता,
लोक आदि से सम्बन्धित को 'महासंहिता',
जिस तरह पाँच प्रकार की होती है संधि[77],
वैसे ही पाँच आश्रयवाली होती महासंहिता ।

लोक, ज्योति, विद्या, प्रजा और शरीर,
पूर्वोक्त महासंहिता के पाँच आश्रय हैं ये,
संधि के जैसे चार भाग[78] होते हैं, वैसे ही,
चार-चार भाग होते इन पाँचो आश्रयों के ।

---

[76] यथा उच्च, मध्यम या निम्न स्वर ।

[77] पाँच प्रकार की संधि-यथा स्वर, व्यंजन, स्वादि, विसर्ग और अनुस्वार ।

[78] संधि और जो लोक आदि में संहिता-दृष्टि बताई जाती है उसके भी ये चार भाग-यथा पूर्ववर्ण (पूर्वरूप), परवर्ण (उत्तररूप), दोनों के मेल से होनेवाला रूप (संधि) तथा दोनों का संयोजक नियम (संधान या संयोजक) ।

उनमें से पहली लोकविषयक संहिता का,
पृथ्वी ही पूर्वरूप, स्वर्ग उत्तररूप है इसका,
आकाश या अन्तरिक्ष संधि है दोनों की,
और वायु संधान या संयोजक है इनका ।

दूसरी ज्योतिविषयक संहिता का,
पूर्वरूप अग्नि, सूर्य उत्तररूप इसका,
मेघ इन दोनों की संधि से बना रूप,
और बिजली जोड़ने का हेतु इनका ।

तीसरी विद्याविषयक संहिता का,
पूर्वरूप आचार्य, शिष्य उत्तररूप इसका,
विद्या इन दोनों का मिला हुआ रूप,
और उपदेश संधि का हेतु इनका ।

इसी प्रकार प्रजाविषयक संहिता का,
माता पूर्वरूप, पिता उत्तररूप इसका,
सन्तान इन दोनों का मिला हुआ रूप,
और प्रजनन संधि का कारण इनका ।

ऐसे ही शरीरविषयक संहिता के हैं,
नीचे-ऊपर के जबड़े पूर्व और उत्तर रूप,
दोनों के मिलने से वाणी संधि है,
जिह्वा इसका उत्पत्ति कारण रूप ।

कही गयी इस प्रकार ये पाँचो संहिताएँ,
जो इनको उपरोक्त प्रकार से जान लेता,
सन्तान, धन-धान्य, ब्रह्मतेज से सम्पन्न,
स्वर्गलोक प्राप्ति की वो पात्रता पा लेता ।

चतुर्थ अनुवाक

वेदों में सर्वश्रेष्ठ, सर्वरूप, अमृतस्वरूप,
उन्हीं से प्रकटा परमेश्वरस्वरूप 'ओंकार',
सबका स्वामी सम्पन्न करे मुझे मेघा से,
मैं परमेश्वर को हृदय से करूँ स्वीकार ।

रोगरहित और फुर्तीला हो मेरा शरीर,
जिह्वा से ओंकार नाम मैं जपता रहूँ,
कानों से सुनू परमेश्वर की निधि ओंकार,
उपदेशानुसार अपना जीवन जीता रहूँ ।

उसके बाद ऐश्वर्य की कामना है जिन्हें,
वे परमेश्वर से प्रार्थना करते आहुति दें,
विनती करें तत्काल आवश्यकताएँ पूरी हों,
भोगों के सब साधन उपलब्ध करा दें ।

आचार्य ब्रह्मचारियों के हित के लिए,
प्रार्थना करे कि शिक्षार्थी पास आएँ मेरे,
सरल, ज्ञानग्राही, संयमी, आत्मजयी हों,
स्वाहा कहते, आहुतियाँ समर्पित करें ।

अपने लौकिक व पारलौकिक हित के लिए,
आचार्य को ऐसे हवन करना चाहिए,
यश और उज्ज्वल आचरण की कामना से,
स्वाहा कहते पहली आहुति देनी चाहिए ।

फिर धन की कामना से दूसरी आहुति,
भगवान में प्रविष्टि हेतु तीसरी आहुति,
भगवद स्वरूप के प्रविष्टि हेतु चौथी,
और विशुद्ध बनने हेतु पाँचवी आहुति ।

बहती नदी जैसे जा मिलती समुद्र में,
दिन, महीने जैसे संवत्सररूप काल में,
वैसे ही मेरे पास आएँ ब्रह्मचारी लोग,
उन्हें विद्यादानकर आपको पा जाऊँ मैं ।

पञ्चम अनुवाक

तीन प्रसिद्द व्याहृतियाँ[79] भूः, भुवः, स्वः,
चौथी 'महः' को जाना महाचमस के पुत्र ने,
यह चौथी ब्रह्मरूप इन तीनों की आत्मा है,
अन्य सभी देवता शामिल इस चौथी में ।

भूः यह व्याहृति ही यह पृथ्वीलोक है,
भुवः अन्तरिक्ष-लोक, स्वः स्वर्ग-लोक,
ये तीनों परमेश्वर के विराट शरीररूप,
परमेश्वर का प्रतीक महः सूर्य-लोक ।

ज्योतियों में भूः मानों अग्नि है,
अग्निदेव जो है अधिष्ठाता वाणी का,
विषयों का प्रकाशक होने के कारण,
वाणी भी है एक रूप ज्योति का ।

भुवः वायु है त्वक्-इन्द्रिय का अधिष्ठाता,
जो स्पर्श को प्रकाशित करनेवाली ज्योति,
स्वः सूर्य है चक्षु-इन्द्रिय का अधिष्ठाता,
जो रूप को प्रकाशित करनेवाली ज्योति ।

चौथी व्याहृति महः मानों चन्द्रमा है,
मन का अधिष्ठाता, प्रकाशक विषयों का,
सब ज्योतिरूप इन्द्रियाँ इससे महिमा पाती,
सो मन का पूजन, पूजन परमेश्वर का ।

वेदों के संदर्भ में भूः ऋग्वेद है,
भुवः सामवेद है और स्वः यजुर्वेद,
वेदों की महिमारूपी महः ब्रह्म है,
परमेश्वर से ही व्याप्त हैं सभी वेद ।

प्राणों के संदर्भ में भूः मुख्य प्राण है,
भुवः मानों अपान है और स्वः है व्यान,
और चौथी व्याहृति महः मानों अन्न है,
जिससे महिमायुक्त होते समस्त प्राण ।

लोक, ज्योति, वेद और प्राण नामक,
इन चार व्याहृतियाँ के चार-चार भेद,
इनका ज्ञाता, ब्रह्म को जान लेता,
उसका आदर सत्कार करते समस्त देव ।

षष्ठ अनुवाक

जैसा कि पहले बतलाया गया है,
हृदय के भीतर अंगुष्ठमात्र आकाश में,
वे परम पुरुष परमेश्वर विराजमान हैं,
कहीं ओर क्यों जाना उन्हें खोजने ?

मुख में दोनों तालुओं के बीच स्थित,
जो यह उत्तक अधिजिह्वा[80] लटक रहा,
उसके भी भीतर, जो केशों का मूलस्थान,
सुषुम्ना नाड़ी ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती वहाँ ।

हृदय-देश से निकल, अधिजिह्वा से होकर,
दोनों कपालों को भेद सुषुम्ना निकलती,
इन्द्र नाम से कहे जानेवाले परमेश्वर की,
प्राप्ति का द्वार है यही ब्रह्मरन्ध्र ही ।

---

[79] व्याहृति-इस संस्कृत शब्द का अर्थ 'भाषण' या उच्चारण है । हिन्दू दर्शन में सात व्याहृतियाँ उच्च लोक या अस्तित्व के स्तर हैं । इन्हें उच्च लोक भी कहा गया है जबकि निचले लोकों को सात पाताल कहा जाता है ।

[80] अधिजिह्वा-अर्थात 'काक, घाँटी या इंग्लिश में Uvula ।

अन्तकाल ब्रह्मरन्ध्र से निकल वो महापुरुष,
स्थित होता भू नाम से अभिहित अग्नि में,
वहाँ से भुवः, भुवः से स्वः लोक में जाकर,
स्थित होता महः नाम से कहे ब्रह्म में ।

मन के स्वामी परमेश्वर को पाने से,
प्रकृति का वो अधिष्ठाता बन जाता,
वाणी, नेत्र, और कानों का स्वामी बन,
विज्ञान का भी वो स्वामी बन जाता ।

आकाश सम निराकार और सर्वव्यापी,
अतिशय सूक्ष्म शरीरवाले हैं वे ब्रह्म,
समस्त इन्द्रियों और मन के आश्रय,
शान्त, शाश्वत, सबके उपास्य ब्रह्म ।

सप्तम अनुवाक

तीनों लोक, दिशाएँ और अवान्तर दिशाएँ,
लोकों की है यह आधिभौतिक पङ्क्ति[81],
अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र,
ज्योतियों की है यह आधिभौतिक पङ्क्ति ।

जल, ओषधियाँ, वनस्पति, आकाश, शरीर,
स्थूल पदार्थों की यह आधिभौतिक पङ्क्ति,
जैसे है यह भौतिक पंक्तियों का समूह,
वैसे ही है आध्यात्मिक समूहों की पङ्क्ति ।

प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान,
ये पाँच प्राण मिल बनते प्राणों की पङ्क्ति,
ऐसे ही नेत्र, कान, मन, वाणी और त्वचा,
मिलकर बनती करण-समुदाय की पङ्क्ति ।

चर्म, मांस, नाड़ी, हड्डी और मज्जा,
ये हैं शरीरगत धातुओं की पङ्क्ति,
इन सब पङ्क्तियों में घनिष्ठ सम्बन्ध,
जाननेवाला करता शक्तियों में उन्नति ।

पहली आधिभौतिक लोकविषयक पङ्क्ति,
सम्बन्धित है चौथी प्राणवाली पङ्क्ति से,
दूसरी ज्योतिविषयक अधिभौतिक पङ्क्ति,
सम्बद्ध पाँचवी करणसमुदाय पङ्क्ति से ।

तीसरी स्थूल पदार्थ विषयक पङ्क्ति,
सम्बद्ध शरीरगत धातुओं वाली पङ्क्ति से,
मनुष्य सांसारिक उन्नति कर सकता,
स्थूल और सूक्ष्म का सम्बन्ध जान ऐसे ।

अष्टम अनुवाक

'ॐ' ही ब्रह्म, ॐ ही यह दृश्यमान जगत,
ॐ ही सूचक बात का अनुमोदन करने का,
आचार्य भी ॐ कह उपदेश आरम्भ करते,
ॐ से ही प्रारम्भ होता गान सामवेद का ।

ओम-शोम कह शुरू किया जाता मन्त्र-पाठ,
ऋत्विक भी उच्चारण करते ॐ शब्द का,
शिक्षार्थी भी ॐ कह वेदाध्ययन शुरू करते,
जिसके फलस्वरूप ज्ञान पाते वे वेद का ।

नवम अनुवाक

अध्ययन और अध्यापन दोनों उपयोगी,
कर्तव्य, विधि और फल का देते ये ज्ञान,
सदाचार, सत्यभाषण, स्वधर्म पालन आदि,
जीवन के श्रेष्ठ कर्मों में वेदों का स्थान ।

[81] पङ्क्ति अर्थात श्रेणी, कतार, अनुक्रम ।

रथीतर के पुत्र सत्यवचा ऋषि कहते,
सब कर्मों में सत्य ही है सर्वश्रेष्ठ,
सत्यभाषण और सत्यभावयुक्त कर्म ही,
यथार्थरूप से सम्पन्न कर्म श्रेष्ठ ।

पुरुशिष्टपुत्र तपोनित्य ऋषि कहते हैं,
तपश्चर्या ही श्रेष्ठ है सब कर्मों में,
उसके बल पर ही सामर्थ्य मिलती है,
धर्मपालन करने और दृढ़ रहने में ।

मुद्गल के पुत्र नाक ऋषि का कहना है,
वेद का पठन-पाठन ही है श्रेष्ठ सबमें,
वही तप है, सब धर्मों का ज्ञान जो देता,
ये सब धर्म शामिल हों सभी कर्मों में ।

दशम अनुवाक

आत्म-साक्षात्कार कर ऋषि त्रिशंकु,
अपना अनुभव इन शब्दों में कहते,
संसार-वृक्ष का मैं उच्छेद करनेवाला,
मेरी कीर्ति उन्नत पर्वत-शिखर जैसे ।

अन्नोत्पादक शक्ति से युक्त सूर्य में,
उत्तम अमृत का निवास है जैसे,
रोग-दोष आदि से सर्वथा मुक्त,
विशुद्ध, अमृतस्वरूप मैं भी हूँ वैसे ।

प्रकाशयुक्त धन का भंडार भी हूँ मैं,
सम्पन्न श्रेष्ठ धारणा-युक्त बुद्धि से,
परमानन्द अमृत में पूर्णरूप से निमग्न,
ये उदगार हैं आत्म-लाभ प्राप्त मुनि के ।

एकादश अनुवाक

वेद का भलिभाँति अध्ययन करा आचार्य,
समावर्तन-संस्कार[82] पर शिष्य से कहता,
कि गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करने पर वो,
आचरण में सदा पालन करे सत्य का ।

विपत्ति में भी आश्रय ले न झूठ का,
धर्माचरण करे, स्वाध्याय में लगा रहे,
वांछित दक्षिणा लाकर दे आचार्य को,
उनकी आज्ञा से गृहस्थ में प्रवेश करे ।

उच्छेद न करे सन्तान परम्परा का,
शुभ कर्मों में कोताही करे न कभी,
प्रमाद न करे पितृकार्यों को करने में
वेद पढ़ने-पढाने में भूल करे न कभी ।

माता, पिता और आचार्य में तुम,
सदा देवबुद्धि रखनेवाले बनो,
निर्दोष कर्म करो, दोषयुक्त का त्याग,
गुरुजन की सेवा करनेवाले बनो ।

[82] समावर्तन-संस्कार-शिक्षा की समाप्ति पर गृहस्थ में प्रवेश से पूर्व का संस्कार ।

श्रद्धा के साथ देना चाहिए दान,
अपनी आर्थिक स्थिति का रखते ध्यान,
लज्जा और भय[83] हो दान देने में,
विवेक और कर्त्तव्यभाव से प्रेरित हो दान ।

यदि दुविधा हो कर्त्तव्य निश्चित करने में,
या कोई शंका हो आचरण के सम्बन्ध में,
तो सत्कर्म और सदाचार में लगे महापुरुष,
उनका आचरण होना चाहिए प्रमाण तुम्हें ।

ऐसे ही किसी लांछित व्यक्ति के साथ,
कैसा व्यवहार किया जाए इसमें हो शंका,
तो निष्काम विद्वानों का करें अनुसरण,
यही उचित उपदेश, यही वेदों की शिक्षा ।

द्वादश अनुवाक

कल्याणकारी हों हमारे लिए मित्र, वरुणादि,
इन्द्र और बृहस्पति शान्ति करनेवाले हों,
विशाल डगोंवाले विष्णु कल्याण करें हमारा,
हम नमस्कार करते अन्तर्यामी ब्रह्म को ।

हे सबके प्राणस्वरूप वायुमय परमेश्वर !
तुम्हीं सभी प्राणियों के प्रत्यक्ष ब्रह्म हो,
ब्रह्म, ऋतु और सत्य नाम से पुकारा,
क्योंक तुम्हीं सबके अधिष्ठाता देव हो ।

सत्-आचरण, भाषण और सत्य विद्या,
ग्रहण करने की शक्ति मुझे देकर,
इस जन्म-मरणरूप संसार चक्र से,
रक्षा की है आपने हे परब्रह्म-परमेश्वर !
सत्य का उपदेश और प्रचार की शक्ति,
मेरे आचार्य को दे कल्याण किया उनका,
रक्षा की है मेरे आचार्य की हे परमेश्वर !
मेरे वक्ता और मेरी भी की आपने रक्षा ।

ब्रह्मानन्दवल्ली

"शान्तिपाठ"

परमात्मा करें हमारी रक्षा और पालन,
हम दोनों साथ-साथ शक्ति प्राप्त करें,
तेजोमयी हो हमारी पढ़ी हुई विद्या,
हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें ।

प्रथम अनुवाक

परब्रह्म को प्राप्त कर लेता ब्रह्मज्ञानी,
कहा गया यह प्रकट करने इस भाव को,
हृदय में छिपे ब्रह्म को जान लेने पर,
परमात्मा संग दिव्य आनन्द भोगता वो ।

निश्चय ही परमात्मा से उत्पन्न हुआ,
पञ्च महाभूतों में पहले-पहल आकाश,
आकाश से हुई वायु, वायु से अग्नि,
अग्नि से जल फिर पृथ्वी उसके बाद ।

पृथ्वी से उत्पन्न हुई समस्त ओषधियाँ,
और ओषधियों से हुआ अन्न उत्पन्न,
यह मनुष्य शरीर जो अन्नरसमय है,
वह मनुष्य शरीर अन्न से हुआ उत्पन्न ।

---

[83] यह समस्त जगत भगवान का है, अत: किसी वस्तु को अपना मानने में संकोच और जो दिया जा रहा है उसे कम ही समझना चाहिए; दान लेनेवाले में भी परमात्मा की दृष्टि रखकर भय मानना चाहिए की मुझमें देने का अभिमान न आने पाए ।

मनुष्य का सिर मानों पक्षी का सिर[84],
दोनों हाथ, दाए-बाए पंख पक्षी के,
मध्यभाग पक्षी के शरीर का मध्यभाग,
उसके दोनों पैर, पूँछ और पैर पक्षी के ।

पृथ्वी की आधिदैविक शक्ति ही,
जो अपान वायु को रोककर रखती,
आधार है इस प्राणमय पुरुष का,
महिमा आगे कही गयी जिसकी ।

द्वितीय अनुवाक

जितने भी स्थूल शरीरधारी जीव हैं,
वे सब-के-सब उत्पन्न होते अन्न से,
अन्न से ही उनके सब अंग पुष्ट होते,
और अन्त में जा मिलते उसी अन्न से[85] ।

सब तरह से अन्न पर निर्भरता होने से,
यह सर्वोषधरूप अन्न श्रेष्ठ सब भूतों में,
ब्रह्मरूप[86] से उपासना करते जो अन्न की,
कमी रहती न उन्हें अन्न की जीवन में ।

निश्चय ही अन्नरसमय शरीर से भिन्न,
इसके भीतर रहता एक और प्राणमय शरीर,
वह प्राणमय शरीर भी होता पुरुषाकार का,
स्थूल शरीर के ही अनुरूप होता वो शरीर ।

पक्षी के रूप में प्राणमय शरीर देखने पर,
प्राण ही मानों सिर है उस पक्षी का,
व्यान-अपान दाए-बाए पंख हैं उसके,
वायु के भांति 'समान वायु' आत्मा उसका ।

तृतीय अनुवाक

देवता, मनुष्य, पशु आदि सभी प्राणी,
सब-के-सब जी रहे प्राणों के सहारे,
प्राण ही सभी प्राणियों का जीवन है,
इसीलिए 'सर्वायुष' ये प्राण कहाते ।

प्राणियों की आयु प्राण को समझकर
जो साधक ब्रह्मरूप से इसे उपासते,
इस प्राण के तत्त्व को समझकर वो,
पूर्ण आयु को सहज प्राप्त कर लेते ।

निश्चय ही इस प्राणमय शरीर से भिन्न,
उसके भीतर मनोमय पुरुष रहता,
व्याप्त किए रहता प्राणमय शरीर को,
और उसी के आकार को लिए रहता ।

यजुर्वेद मानों सिर है मनोमय शरीर का,
ऋग्वेद और सामवेद दाए-बाए पंख उसके,
विधिवाक्य मनोमय शरीर का मध्यभाग,
अथर्ववेद के मन्त्र पूँछ और आधार उसके ।

---

[84] यहाँ मनुष्य शरीरधारी पुरुष की पक्षी के रूप में कल्पना की गयी है ।

[85] मृत्यु होने पर स्थूल शरीर इसी अन्न के उद्गम स्थल पृथ्वी में विलीन हो जाते हैं ।

[86] अर्थात अन्न की श्रेष्ठता और उपयोगिता को भलीभाँति जानना ।

चतुर्थ अनुवाक

मन, वाणी आदि इन्द्रियों के समुदायरूपी,
मनोमय शरीर की भी पहुँच नहीं जहाँ,
उस ब्रह्म को पाने की जो करते साधना,
मनोमय शरीर उसे द्वार तक पहुँचा देता ।

परब्रह्म के द्वार तक पहुँचाकर,
उसे वहीं छोड़ यह स्वयं लौट आता,
वह साधक प्राप्त हो जाता ब्रह्म को,
भयभीत न होता ब्रह्मानन्द का ज्ञाता ।

मनोमय शरीर से भी सूक्ष्म जीवात्मा[87],
व्याप्त रहता उस मनोमय शरीर में,
मनोमय व्याप्त प्राणमय और स्थूल में,
सो जीवात्मा ऐसे व्याप्त सारे शरीर में ।

इस विज्ञानमय जीवात्मा का आकार भी,
निश्चय ही है पुरुष के आकार जैसा,
व्याप्त होने से मनोमय शरीर में,
वह पुरुष के आकार का कहा जाता ।

श्रद्धा सिर है उस विज्ञानमय आत्मा का,
सदाचार, सत्यभाषण दाए-बाए पंख उसके,
परमात्मा से योग इस शरीर का मध्यभाग,
प्रसिद्द 'मह'[88] पूँछ और आधार है उसके ।

पञ्चम अनुवाक

बुद्धि के साथ तद्रूप हुआ जीवात्मा ही,
शुभ-कर्मरूप पुण्यों का विस्तार करता,
ब्रह्म के रूप में विज्ञानमय जीवात्मा की,
सेवा करते इन्द्रिय और मनरूपी देवता ।

विज्ञानस्वरूप आत्मा को ब्रह्म समझकर,
जो इस भावना से फिर च्युत नहीं होता,
संचित पापसमुहों को शरीर में ही छोडकर,
समस्त दिव्य भोगों का अनुभव करता ।

इस विज्ञानमय जीवात्मा के भी,
अन्तर्यामी आत्मा हैं वे ही परमेश्वर,
जो अन्नरसमय स्थूल शरीर के और,
प्राणमय और मनोमय के हैं परमेश्वर ।

निश्चय ही इस विज्ञानात्मा से भिन्न,
उसके भीतर आनन्दमय परमात्मा रहता,
व्याप्त किए रहता विज्ञानमय शरीर को,
और उसी के आकार को लिए रहता ।

परमेश्वर का प्रियभाव ही सिर है उनका,
मोद और प्रमोद[89] दाए-बाए पंख उनके,
आनन्द ही परमात्मा का मध्य अंग है,
स्वयं ब्रह्म ही पूँछ और आधार उनके ।

---

[87] जीवात्मा-अर्थात विज्ञानमय शरीर ।

[88] मह व्याहृति ब्रह्म का नाम है ।

[89] किसी भी इष्ट वस्तु का दर्शन या चिन्तन प्रियता है; इष्ट वस्तु की प्राप्ति से मोद वृत्ति जन्म लेती है और अन्ततः उस वस्तु के भोग से प्रमोद वृत्ति उत्पन्न होती है ।

षष्ठ अनुवाक

अगर कोई यह मानता कि ब्रह्म नहीं है,
तो वह स्वेच्छाचारी होकर भ्रष्ट हो जाता,
पर ब्रह्म का यथार्थ तत्त्व न जानकर भी,
उसकी सत्ता में विश्वास, उसे संत कहाता

तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की पहली सीढ़ी,
परमेश्वर की सत्ता में विश्वास का होना,
कभी-न-कभी किसी महापुरुष की कृपा से,
संभव है तब उसे ब्रह्म को प्राप्त होना ।

इस आनन्दमय परमात्मा की अन्तरात्मा,
स्वयं है वे परमानन्दस्वरूप परमेश्वर ही,
शरीर और शरीरी का भेद नहीं उनमें,
कोई और दूसरा उनका अन्तर्यामी नहीं ।

अब यहाँ से आरम्भ होते हैं अनुप्रश्न[90],
क्या कोई ब्रह्म से अनभिज्ञ व्यक्ति,
मरकर जाता है उस परलोक में या,
क्या ज्ञानी को उसकी होती प्राप्ति ?

आदि में 'मैं प्रकट होऊँ' यह विचारकर,
संकल्परूपी तप किया परमेश्वर ने,
तब जो यह देखने, सुनने आदि में आता,
वह जड़-चेतनयुक्त जगत रचा उसने ।

उस जगत की रचना करने के अनन्तर,
साथ-साथ प्रविष्ट हो गया वह उसमें,
मूर्त और अमूर्तरूप[91] में वह स्वयं ही,
प्रकट हो गये समस्त जगत रूप में ।

बताने में आनेवाले और न आनेवाले,
आश्रय देनेवाले और आश्रय न देनेवाले,
जड़-चेतन, सत्य-असत्य सभी कुछ,
वे सत्यस्वरूप ही हैं, कहते प्रज्ञावाले ।

सप्तम अनुवाक

व्यक्त होने से पहले अव्यक्त था यह,
उससे ही प्रकटा यह जड़-चेतनरूपी जगत,
उसने अपने को स्वयं ही प्रकट किया,
इसलिए 'सुकृत'[92] कहलाता है ये जगत ।

उपरोक्त सुकृत नाम से वर्णित परब्रह्म,
सचमुच रसस्वरूप और वास्तविक आनन्द,
आकाश से व्यापक वे न होते तो कौन,
चेष्टा कर सकता, पा सकता था आनन्द ?

क्योंकि जब कभी यह जीवात्मा करता,
निर्भय स्थिति लाभ परब्रह्म परमेश्वर में,
तब वह निर्भय पद को प्राप्त हो जाता,
सफल होता भय और शोक-मुक्त होने में ।

---

[90] अनुप्रश्न-अर्थात गुरु के उपदेश के बाद शिष्य के अंतर्मन में उपजे प्रश्न ।

[91] मूर्त और अमूर्तरूप-अर्थात प्रथ्वी, जल और तेज इन भूतों के रूप में देखने में आनेवाले और वायु और आकाश -इन न दिखाई देनेवाले भूतों के रूप में प्रकट हो गये ।

[92] सुकृत-अर्थात अपने-आप बना हुआ ।

क्योंकि जब तक ज़रा सा भी वियोग रहता,
जन्म-मृत्युरूपी भय उसको बना ही रहता,
केवल अज्ञानियों को ही नहीं होता यह भय,
वेदज्ञ विद्वानों को भी अंदेशा बना रहता ।

अष्टम अनुवाक

इसी[93] के भय से चलता है पवन,
सूर्य भी उदित होता इसी के भय से,
अग्नि, इन्द्र और मृत्यु भी प्रवर्त होते,
अपने-अपने कार्यों में इसी के भय से ।

ऊपर आनन्द की जो बात कही गयी,
अब विचार उस आनन्द-सम्बन्धी बात पर,
किसी मनुष्य के लिए क्या हो सकता,
सबसे बढ़कर सुख इस पृथ्वी पर ?

कोई युवक श्रेष्ठ सदाचारी, विद्वान हो,
सम्पूर्ण अंग और इन्द्रियाँ सुदृढ़ हों उसके,
कुशल शासक, समस्त पृथ्वी का राजा,
मानव-लोक का महा-आनन्द इसे कहेंगे ।

इस आनन्द से सौगुना अधिक होता,
किसी मनुष्य-गन्धर्व[94] का एक आनन्द,
लेकिन भोगों से विरक्त वेदज्ञ-पुरुष को,
स्वभाव से ही प्राप्त होता वह आनन्द ।

मनुष्य-गन्धर्व से सौगुना अधिक होता,
देव-जातीय गन्धर्वों का एक आनन्द,
और चिर-स्थायी पितृ-लोक के पितरों का,
इससे सौगुना होता उनका एक आनन्द ।

ऐसे ही क्रमश: आजानज[95] नामक देवता,
उनसे सौगुना कर्मदेव[96] नामक देवों का,
उनसे सौगुना देवताओं का एक आनन्द,
और उनसे सौगुना एक आनन्द इन्द्र का ।

इन्द्र से सौगुना बृहस्पती का एक आनन्द,
उससे सौगुना एक आनन्द प्रजापति का,
हिरण्यगर्भ ब्रहमा का आनन्द सौगुना उससे,
विरक्त वेदज्ञ जिसे स्वभावत: ही पाता ।

एकमात्र परमात्मा ही इस आनन्द का स्रोत,
उन सर्वान्तर्यामी को जो ऐसे जान लेता,
अन्नमय आदि[97] कोषों को प्राप्त होकर,
वो परब्रहम परमात्मा को प्राप्त हो लेता ।

नवम अनुवाक

मन सहित वाणी आदि सभी इन्द्रियाँ,
लौट आती जहाँ से 'उसे' न पाकर,
उस ब्रहम के आनन्द को जाननेवाला,
उसे जानकर हो जाता सर्वथा निडर ।

---

[93] इसी के अर्थात परब्रहम परमेश्वर के भय से ।

[94] मनुष्य-गन्धर्व-अर्थात जो मनुष योनि में उत्तम कर्म करके गन्धर्व-भाव को प्राप्त हुए हैं, उनका एक आनन्द मनुष्यों के उपरोक्त आनन्द से सौगुना अधिक होता है ।

[95] आजानज-देवलोक के एक स्थान विशेष का नाम 'आजान' है; जो लोग वेदोक्त पुण्य-कर्मों के फलस्वरूप वहाँ उत्पन्न हुए हैं, उन्हें 'आजानज' कहते हैं ।

[96] कर्मदेव-अर्थात वेदोक्त पुण्यकर्मों के फलस्वरूप देवत्व को प्राप्त देवता ।

[97] अन्नमय आदि-अर्थात अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोशों का अतिक्रमण कर परब्रहम परमात्मा को प्राप्त हो जाता है ।

ऐसा महापुरुष चिन्तन नहीं करता,
कि पुण्य या पाप कर्म किए हैं उसने,
राग-द्वेष से सर्वथा रहित हो वह ज्ञानी,
लगा रहता परमात्मा के चिन्तन में ।

भृगुवल्ली

प्रथम अनुवाक

ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष वरुण के पुत्र भृगु ने,
जानना चाहा ब्रह्म के विषय में पिता से,
अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन और वाणी,
ब्रह्म प्राप्ति के द्वार हैं वे बोले भृगु से ।

जिनसे उत्पन्न हो और बल पाकर प्राणी,
समर्थ होते जीवनोपयोगी क्रिया करने में,
उन्हें वास्तव में जानने की इच्छा कर,
जिनमें सब विलीन हो जाते प्रलयकाल में ।

द्वितीय अनुवाक

इस उपदेश पर विचार कर भृगु ने,
जाना अन्न से ही प्राणी उत्पन्न होते,
उसी अन्न के सहारे ही जीते प्राणी,
और अन्त में उसी में विलीन हो रहते ।

यह जान पिता के पास गए भृगु,
जो जाना, जाकर कह सुनाया उनको,
पर पिता ने कहा तप ही साधन है,
तप करके तत्त्व से जान ब्रह्म को ।

तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, और षष्ठ अनुवाक

तब तप द्वारा निश्चय किया भृगु ने,
जाना प्राण से ही प्राणी उत्पन्न होते,
प्राण के सहारे ही जीते सब प्राणी,
और अन्त में उसी में प्रविष्ट होते ।

फिर से पिता के पास गए भृगु,
जाकर प्राण ब्रह्म हैं कहा पिता को,
पर पिता ने कहा तप ही साधन है,
तप करके तत्त्व से जान ब्रह्म को ।

फिर मन और जीवात्मा को जान ब्रह्म,
पिता वरुण से जाकर कहा भृगु ने,
फिर पिता ने कहा तप करने को,
तब आनन्द ही ब्रह्म है जाना भृगु ने ।

आनन्द से ही सब प्राणी उत्पन्न होते,
उत्पन्न हो जीते सब उसी के सहारे,
फिर इस लोक से प्रयाण करते हुए,
आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाते वे सारे ।

आनन्दमय परमात्मा ही अन्तरात्मा सबके,
अन्नमय आदि सभी स्थूल रूप हैं इनके,
इस कारण उनमें ब्रह्म-बुद्धि होती है,
आंशिक लक्ष्ण पाए जाते उनमें ब्रह्म के ।

यह ज्ञान ही पूर्ण ज्ञान ब्रह्म का,
वरुण का उपदेश, भृगु ने जाना जिससे,
जो कोई भी इसे इस प्रकार जान लेता,
परमानन्दमय हो, भर जाता ब्रह्मतेज से ।

सप्तम, अष्टम और नवम अनुवाक

अन्नादि से सम्पन्न होने के इच्छुक,
अन्न की निन्दा न करने का व्रत लें,
अन्न ही प्राण और प्राण ही अन्न है,
प्राण से जीवन शक्ति आती शरीर में ।

प्राण पहुँचाता अन्न का रस शरीर में,
शरीर टिका हुआ जिसके आधार पर,
और ये प्राण शरीर में स्थित होने से,
अन्न में अन्न रह रहा स्थित होकर ।

अन्न का अनादर न करने का व्रत ले,
समझना चाहिए इसका महत्त्व तत्त्व से,
जल से उत्पन्न, सो जल ही अन्न है,
अन्न का भोक्ता[98] तेज निहित जल में ।

समझ लेता इस तत्त्व को जो मनुष्य,
सिद्ध हो जाता वो विज्ञान में इनके,
सब तरह समृद्ध और सामर्थ्यवान बन,
महान हो जाता कीर्ति और ब्रह्मतेज से ।

अन्नादि से समृद्ध जिसे होना हो,
अन्न को बढ़ाने का वो संकल्प ले,
पृथ्वी से उत्पन्न होने के कारण,
पृथ्वी भी अन्न है वो यह जान ले ।

पृथ्वी भी अन्न, आकाश भी अन्न,
दोनों एक-दूसरे का आधार होने से,
यह रहस्य जो भलीभाँति जान लेता,
समृद्धि और यश पाता सब प्रकार से ।

दशम अनुवाक

अपने घर पर आए हुए अतिथि का,
कभी किसी तरह कोई तिरस्कार न हो,
'भोजन तैयार है', उसे कहने के लिए,
अन्न प्राप्त करना चाहिए, जैसे भी हो[99] ।

उत्तम, मध्यम या निम्न श्रद्धा से,
जैसे सत्कार किया जाता अतिथि का,
वैसे ही भाव से प्राप्त होती हैं उसे,
अन्नादि और अन्य भोग्य सामग्रियाँ ।

परमात्मा की विभूतियों का चिन्तन,
जीवन की हर क्रिया के साथ-साथ में,
वाणी में रक्षक-शक्ति[100] परमात्मा की ही,
उसी की शक्ति बसी प्राण-अपान[101] में ।

हाथों में कर्म करने की शक्ति बनकर,
पैरों में चलने की शक्ति के रूप में,
गुदा में मल त्याग करने की शक्ति,
इन्हें देख विश्वास हो उसकी सत्ता में ।

---

[98] जिस प्रकार अग्नि और सूर्यरश्मियाँ बाहर के जल का शोषण करती हैं उसी प्रकार जठराग्नि भीतर भोजन के रस का शोषण करती है । सूर्यरश्मियाँ जल को सोखकर जलवृष्टि का कारण बनती हैं, जिससे अन्न उत्पन्न होता है, अतः जल और तेज दोनों ही अन्न हैं ।

[99] अर्थात जो भी न्यायोचित उपाय सम्भव हैं उन्हें अपनाकर अतिथि के लिए उसके सत्कार की सामग्री जुटाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

[100] वाणी में आशीर्वाद आदि के रूप में रक्षा करने की शक्ति ।

[101] प्राण-अपान में जीवनोपयोगी वस्तुओं को आकर्षण करने की और जीवन-रक्षा करने की शक्ति ।

ये सब तो आध्यात्मिक[102] उपासनाएँ हैं,
अब वर्णन आधिदैविक[103] शक्तियों का,
वृष्टि में बसी तृप्ति शक्ति के रूप में,
बिजली में उपस्थित रूप लिए बल का ।

पशुओं में यशरूप, ग्रह-नक्षत्रों में ज्योति,
उपस्थ में प्रजा, वीर्य और आनन्द रूप में,
आकाश में सबका आधार बनकर स्थित है,
ये परमेश्वर की शक्ति, प्रकट अंश रूप में ।

जिस भाव से जो पूजता परमेश्वर को,
उसी के अनुरूप फल प्राप्त होता उसको,
जो मानता उपास्यदेव को सबका आधार,
सबसे प्रतिष्ठा मिलती उस साधक को ।

उपासता उसे जो महान समझकर,
तो वह स्वयं महानता को होता प्राप्त,
जो उपासना करता उसे मन समझकर,
तो वह मनन शक्ति को कर लेता प्राप्त ।

नमस्कार करने योग्य समझ जो पूजता,
वह स्वयं नमस्कार करने योग्य बन जाता,
पूरी होने लगती उसकी समस्त कामनाएँ,
समस्त भोग-सामग्री वह सहज पा जाता ।

अपने उपास्यदेव की ही प्राप्ति के लिए,
उन्हें सबसे बड़ा सर्वाधार ब्रह्म समझकर,
जो उपासना करता अपने उपास्यदेव की,
वो कृतार्थ होता उन परमेश्वर को पाकर ।

ब्रह्म द्वारा नियुक्त संहारक देवता समझ,
जो अपने उपास्यदेव की उपासना करता,
उसके सभी द्वेषी-शत्रु स्वत: नष्ट हो जाते,
अप्रिय बन्धुओं का भी नाश हो रहता ।

वह परमानन्दस्वरूप अन्तर्यामी परमात्मा,
एक ही है, हृदय में विराजमान जो सबके,
वही अभिव्यक्त हो रहा है नाना रूपों में,
परब्रह्म को पा जाता, ज्ञानी इसे जान के ।

अन्नमय आदि कोषों को प्राप्त होकर,
परब्रह्म परमात्मा को वो प्राप्त हो लेता,
इच्छानुसार भोगवाला और रूपवाला होकर,
समतायुक्त भावों का गायन करता रहता ।

आश्चर्य प्रकट करता वो कहता है,
मैं ही भोग हूँ और मैं ही हूँ भोक्ता,
उनका संयोग करानेवाला परमेश्वर भी,
और पहले-पहल प्रकट होनेवाला ब्रह्मा ।

किसी वस्तु के रूप में जो मुझे देता,
मानो मुझे देकर वो मेरी रक्षा करता,
लेकिन भोगों को भोगता जो अपने ही लिए,
उसे अन्नरूप हो मैं निगल लिया करता ।

तिरस्कार करनेवाला समस्त ब्रह्माण्ड का,
क्योंकि वो अत्यन्त तुच्छ मेरी तुलना में,
मेरे प्रकाश की एक झलक भी सूर्य सम,
मेरे ही तेज-अंश समस्त पदार्थ जगत में ।

---

[102] अर्थात शरीर सम्बन्धी शक्तियाँ ।

[103] अर्थात दैवी पदार्थों में अभिव्यक्त होनेवाली शक्तियाँ ।

परम तत्त्व को जो जान लेता ऐसे,
वो भी इस स्थिति को कर लेता प्राप्त,
परमात्मा में एकीभाव से स्थित हो,
उसी की दृष्टि से कही गयी ये बात ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

श्वेताश्वतरोपनिषद्

"ॐ श्वेताश्वतरोपनिषद्"

"शान्तिपाठ"

परमात्मा करें हमारी रक्षा और पालन,
हम दोनों साथ-साथ शक्ति प्राप्त करें,
तेजोमयी हो हमारी पढ़ी हुई विद्या,
हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

प्रथम अध्याय

ॐ

वेदज्ञ जिज्ञासु कह रहे आपस में,
जगत का मुख्य कारण, ब्रह्म है कौन,
किससे उत्पन्न हुए, जी रहे हैं किससे,
हमारे जीवन का आधार है कौन ?

कहाँ से आए, कहाँ हैं, कहाँ जाएँगे,
प्रलय काल में स्थित रहते हैं किसमें,
किसकी व्यवस्था से भोग रहे सुख-दुःख,
इस जगत का संचालन किसके हाथ में ?

वे बोले, अनेक कारण बताते हैं शास्त्र,
उनमें से एक कारण कहा गया है काल,
सृष्टि और प्रलय दोनों का नियन्ता,
शास्त्रों के द्वारा बताया गया है काल ।

कहीं पर स्वभाव को कहा गया है कारण,
क्योंकि जैसा बीज वैसा ही वृक्ष भी उगता,
जो स्वभाविक शक्ति है जिस वस्तु में,
उसी के अनुरूप कार्य की होती सम्पन्नता ।

कहीं कर्म को बताया गया है कारण,
क्योंकि कर्मानुसार जन्म होता जीवों का,
कहीं होनहार को बताया गया है कारण,
कहीं पञ्च-महाभूत, कहीं पर जीवात्मा ।

जगत का कारण कोई भी नहीं है इनमें,
विचार करने पर यह समझ में आता,
ये सब जड़ पदार्थ हैं चेतन के अधीन,
स्वतंत्र कार्य करने की नहीं इनमें क्षमता ।

इसके सिवाय पुरुष यानी जीवात्मा भी,
इस जगत का कारण हो नहीं सकता,
सुख-दुःख के हेतु प्रारब्ध के अधीन वो,
स्वतंत्ररूप से कुछ भी कर नहीं सकता ।

पहुँचे न निर्णय पर जब युक्तियों द्वारा,
तब स्थित हो गए वे सब ध्यान-योग में,
अपने गुणों से ढकी हुई परमात्मदेव की,
अचिन्त्य शक्ति का साक्षात्कार हुआ उन्हें ।

जाना कि काल से लेकर जीवात्मा तक,
समस्त कारणों के हैं जो अधिष्ठाता स्वामी,
जिनकी शक्ति के अंश से वे सामर्थ्य पाते,
जग के वास्तविक कारण वे परमेश्वर ही ।

वे बोले, एक चक्र को देखा उन्होंने,
एक नेमि, तीन घेरे, सोलह सिरोंवाला,
पचास अरे, बीस सहायक अरे, छः अष्टक,
एक पाश से युक्त जो अनेक रूपोंवाला ।

तीन मार्ग पर चलनेवाला यह चक्र,
दो निमित्त इस चक्र को घुमाने में,
जिसकी नाभि में मोहरूपी अज्ञान,
ऐसा यह विश्वरूपी चक्र देखा उन्होंने ।[104]

फिर संसार को नदीरूप में बताते, बोले,
पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच स्रोत हैं इसके,
विषय रूप जल से भरी हुई यह नदी,
बारम्बार जन्म-मरण प्रवाह में इसके ।

टेढ़ी-मेढ़ी चाल से चलनेवाली ये नदी,
पाँच प्राण तरंग, मन मूल है इसके,
पाँच भँवर, पाँच दुःखरूपी तेज प्रवाह,
पाँच पर्व और पचास भेद हैं इसके ।[105]

सबके आश्रय, इस जगतरूपी ब्रह्मचक्र में,
कर्मानुसार यह जीवात्मा घुमाया जाता,
परमात्मा को पृथक जान, उनका प्रिय बन,
अमृतभाव को तब वो प्राप्त हो जाता ।

सर्वश्रेष्ठ आश्रय और अविनाशी परब्रह्म,
तीनों लोक रूपी यह जगत स्थित जिनमें,
अन्तर्यामीरूप से स्थित उन ब्रह्म को जान,
तत्त्वज्ञ मुक्त हो गए, लीन हो उन्हीं में ।

विनाशशील जड़वर्ग व अविनाशी जीवात्मा,
इनसे बने व्यक्त और अव्यक्त जगत को,
वे परमदेव परमेश्वर ही धारण-पोषण करते,
सबके स्वामी, प्रेरक और संचालक हैं जो ।

विषयों का भोक्ता बने रहने के कारण,
जीवात्मा प्रकृति के अधीन हो फँसा रहता,
लेकिन जब जान लेता उन परमेश्वर को,
तब सब बन्धनों से यह मुक्त हो रहता ।

सर्वज्ञ ईश्वर, अल्पज्ञ जीवात्मा और प्रकृति,
ये तीनों-के-तीनों हैं अनादि और अजन्मा,
ईश्वर विलक्षण है जीवात्मा और प्रक्रति से,
क्योंकि कर्ता होकर भी ईश्वर है अकर्ता ।

---

[104] इस मन्त्र में विश्व का चक्र के रूप में वर्णन किया गया है । नेमि चक्र की रक्षा करनेवाले घेरे को कहते हैं जो यहाँ अव्याकृत प्रकृति (अव्यक्त या मूल प्रकृति) को इंगित करता है, जो इस व्यक्त जगत का मूल अथवा आधार है; इस नेमि पर सत्व, रज और तम रूपी तीन घेरे हैं; मन, बुद्धि, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये आठ सूक्ष्म तत्त्व और इनके आठ स्थूल रूप, ये सोलह सिरे; अन्तःकरण की वृतियों के पचास भेद इसके पचास अरे हैं; दस इन्द्रियाँ, पाँच विषय और पाँच प्राण ये बीस सहायक हैं; छः अष्टक-आठ प्रकार की प्रकृति, शरीरगत आठ धातुएँ, अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य, धर्म, ज्ञान, वैराग्य आदि आठ भाव, ब्रह्मा, प्रजापति, देव आदि आठ प्रकार की देवयोनियाँ; और प्राणियों के प्रति दया, क्षमा आदि आठ गुण; आसक्ति रूप पाश जो अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती रहती है; देवयान, पितृयान और इसी लोक में एक से दूसरी योनि में जाने के तीन मार्ग; पाप और पुण्यरूपी दो निमित्त जो जीव को इस संसाररूपी चक्र में घुमाते रहते हैं; और इस चक्र की नाभि के स्थान में अज्ञान है ।

[105] जीवों में प्राण ही चेष्टा का कारण होने से इन्हें इस नदी की तरंग माना गया; मन से ही सृष्टि होने से मन को इसका मूल माना गया; शब्द, स्पर्श आदि पाँच विषय ही भंवर हैं; गर्भ, जन्म, बुढ़ापा, रोग और मृत्यु रूपी पाँच दुःख इस नदी का तेज प्रवाह है; अविद्या, अहंकार, राग, द्वेष और अभिनिवेश (मृत्युभय) ये पाँच पर्व अर्थात विभाग हैं और अन्तःकरण की वृत्तियों के पचास भेद इसके पचास भेद अर्थात पचास रूप हैं ।

इन तीनों की विलक्षणता और विभिन्नता,
जान लेता मनुष्य जब भली प्रकार से,
तब ब्रह्मरूप में उपलब्ध कर उन्हें वो,
मुक्त हो जाता सब प्रकार के बन्धन से ।

क्षर प्रकृति और अक्षर जीवात्मा के,
दोनों के शासक हैं परमदेव परमात्मा,
वे ही तत्त्व से जानने के योग्य हैं,
उनमें मन लगा, उन्हें पा लेता जीवात्मा ।

समस्त क्लेशों का नाश हो जाता,
समस्त बन्धनों से मुक्ति मिल जाती,
निरन्तर ध्यान द्वारा उसे जान लेने पर,
विशुद्ध कैवल्यपद की प्राप्ति हो जाती ।

हृदय में विराजमान अन्तर्यामी को जान,
कुछ और जानने की आवश्यकता न रहती,
प्रकृति, आत्मा और उनका आधार ब्रह्म,
उसी ब्रह्म के विभिन्न रूप हैं ये तीनों ही ।

जिस प्रकार अग्नि छिपी रहती काष्ठ में,
पर प्रकट हो जाती अरणियों के मन्थन से,
वैसे ही अन्तर्यामी जीवात्मा और परमात्मा,
ग्रहण किये जा सकते 'ॐ'-जप साधन से ।

अपने शरीर को नीचे की अरणि बना,
और प्रणव को ऊपर की अरणि बनाकर,
ध्यान द्वारा निरन्तर मन्थन करने से,
छिपी अग्नि की भाँति देखें परमेश्वर ।

जिस प्रकार से तेल, घी और जल,
छिपे रहते तिल, दही और स्रोतों में,
वैसे ही हृदय में छिपे रहते परमात्मा,
जो ग्रहण किए जाते संयमरूप तप से ।

दूध में घी की भाँति जो सर्वत्र परिपूर्ण है,
उन सर्वान्तर्यामी को वो साधक जान लेता,
कि वे ही उपनिषदों में वर्णित पूर्ण ब्रह्म हैं,
वे ही परम तत्त्व ब्रह्म हैं, वो जान लेता ।

द्वितीय अध्याय

हमारे मन और बुद्धि की वृत्तियों को,
परमात्मा लगाए अपने दिव्य स्वरूप में,
इन्द्रियाभिमानी देवता अपनी ज्योति को,
विषयों से हटा, भीतरी स्थिरता दें हमें ।

सबको उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के,
अराधनारूप यज्ञ में लगे मन के द्वारा,
भगवत् प्राप्ति जनित आनन्द पाने को,
पूरे मन और शक्ति से हो प्रयत्न हमारा ।

आकाश में विचरने और प्रकाश फैलानेवाले,
मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवों को,
हमारे मन-बुद्धि से संयुक्त कर परमात्मा,
प्रेरित करें उन्हें हमें अपना प्रकाश देने को ।

ब्राह्मणादि जिनमें अपना मन लगाते,
जिसने अग्निहोत्र आदि का किया विधान,
एक अद्वितीय सबके विचार जाननेवाला,
उस परमेश्वर का करें हम स्तुति-गान ।

हे मन और बुद्धि ! तुम्हारे स्वामी,
और जगत के आदिकारक परमेश्वर को,
बारम्बार नमस्कार कर विनयपूर्वक,
ग्रहण करता हूँ मैं उनकी शरण को ।

मेरी वर्णित परमेश्वर की महिमा,
विद्वान पुरुषों की कीर्ति के जैसे,
व्याप्त हो जाए समस्त जगत में,
दिव्यलोक के वासी भी सुनें इसे ।

जिस स्थिति में परमात्मारूप अग्नि को,
प्राप्त करने के लिए मन्थन किया जाता,
प्राणवायु का निरोध, सोमरस की अधिकता,
उस ध्यानावस्था में मन विशुद्ध हो जाता ।

उनकी स्तुति और प्रेरणा से उनकी,
उनकी ही सेवा और आश्रय ले उनका,
विलीन कर देना चाहिए स्वयं को उनमें,
संचित कर्म भी तब बनेंगे न बाधा ।

सिर, गला और छाती को उन्नत कर,
शरीर सीधा कर, इन्द्रियाँ निरुद्ध कर,
समस्त प्रवाहों को पार कर लेना चाहिए,
ॐकाररूपी नौका से, ब्रह्म का ध्यान कर ।

यथायोग्य आहार-विहार करते हुए साधक,
उन्हें ध्यानयोग के लिए उपयोगी बना ले,
प्राणायाम करते जब प्राण सूक्ष्म हो जाए,
तब नासिका द्वारा उसे बाहर निकाल दे ।

फिर दुष्ट घोड़ों से जुते रथ को जैसे,
कुशल सारथि गन्तव्य तक ले जाता,
वैसे ही साधक मन को वश में कर,
परमात्मा को पाने में समर्थ हो पाता ।

समतल, शुद्ध और सुरक्षित स्थान पर,
सब तरह साधना के जो हो अनुकूल,
ध्यान में लगाने का करे अभ्यास,
अपने मन को साधक, सब कुछ भूल ।

कभी धुआँ, कभी कुहरा, कभी प्रकाश,
कभी जुगनू कभी चन्द्रमा सा दिखता,
ये सब योग साधना में उन्नति दर्शाते,
साधक का ध्यान-योग ठीक चल रहा ।

पञ्च महाभूत सिद्ध हो जाने पर,
योगी को अग्निमय शरीर मिल जाता,
फिर रोग और बुढापा आता न उसे,
उसका शरीर उसके अधीन हो जाता ।

शरीर का हल्कापन, कोई रोग न होना,
अनासक्ति, शारीरिक वर्ण की उज्ज्वलता,
मधुर स्वर, सुगन्ध और मल-मूत्र में कमी,
योग की पहली सिद्धि इसे कहा जाता ।

मिट्टी लगा रत्न धुलकर जैसे,
अपनी चमक फिर बिखेरने लगता,
वैसे ही आत्मतत्त्व को प्राप्त जीवात्मा,
कैवल्य प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता ।

दीप्त आत्मतत्त्व से जब वह योगी,
देख लेता भलीभाँति ब्रह्मतत्त्व को,
तब जन्मादि सभी विकारों से छूट,
तत्त्व से जान लेता वो परमेश्वर को ।

निश्चय ही यह परमदेव परमात्मा,
व्याप्त है सभी दिशा-दिशान्तर में,
हिरण्यगर्भरूप में प्रकटा सबसे पहले,
अन्तर्यामीरूप से स्थित ब्रह्माण्डगर्भ में ।

इस समय जगत के रूप में प्रकट,
वही भविष्य में भी प्रकट होनेवाला,
वही सब जीवों के भीतर स्थित है,
वही सब ओर से सबको देखनेवाला ।

जो परमदेव परमात्मा अग्नि में, जल में,
जो समस्त लोकों में प्रविष्ट हो रहा,
जो ओषधियों में है, वनस्पतियों में है,
बारम्बार नमस्कार, उन परमदेव को मेरा ।

तृतीय अध्याय

जगतरूप जाल की रचना करके जो,
अपनी स्वरूपभूत शक्ति से शासन करता,
उसकी सृष्टि और विस्तार में सर्वथा समर्थ,
उसे जान वह महापुरुष अमर हो रहता ।

इसका शासन और संचालन करनेवाले,
एक ही है वे रुद्ररूप परमदेव परमात्मा,
सब जीवों में स्थित अन्तर्यामीरूप से,
प्रलयकाल में उन्हीं में सब समा जाता ।

सब ओर हाथ, पैर और मुखवाले परमात्मा,
सब लोकों के और सब जीवों के साक्षी,
मनुष्यों को हाथ, पक्षियों को पंख देता,
जो भी देता, सब देता वो परमात्मा ही ।

सबके शासक, देवताओं के सृष्टिकर्ता,
महान ज्ञानी और सबके अधिपति,
आदि में हिरण्यगर्भ उत्पन्न करनेवाले,
वे परमात्मा हमलोगों को दें शुभ बुद्धि ।

हे रुद्रदेव आपकी शान्त और सौम्य छवि,
जिसके दर्शन से मन आनन्दमग्न हो जाता,
पर्वतवासी, सब लोकों को सुख पहुँचानेवाले,
दयादृष्टि हो हम पर, कृपा करो, हे दाता ।

हे गिरिराज हिमालय के रक्षक परमेश्वर !
जिस बाण को आपने ले रखा हाथ में,
कल्याणमय बना लें आप उस बाण को,
जग का विनाश न करें, इसे कष्ट न दें ।

जगत से भी परे, ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ,
जीवों के अनुरूप हो, उनके हृदय में छिपे,
सब ओर से सबको घेरे, सर्वत्र व्यापक,
उन्हें जानकर ज्ञानीजन अमर हो रहते ।

अविद्यारूपी अन्धकार से रहित, तेजस्वी,
उस महानतम पुरुषोत्तम को जो यों जानता,
समर्थ हो जाता जन्म-मृत्यु से पार पाने में,
अन्य कोई मार्ग नहीं परमपद पाने का ।

न उससे सूक्ष्म, न कोई महान उससे,
वृक्ष सा स्थित वो प्रकाशमय आकाश में,
उस अकेले परमपुरुष पुरुषोत्तम से परिपूर्ण,
यह सम्पूर्ण जगत स्थित हो रहा उसी में ।

हिरण्यगर्भ से अति श्रेष्ठ परब्रह्म,
आकाररहित और शून्य सब दोषों से,
अमर हो जाते जो जानते यह रहस्य,
इसे न जाननेवाले त्रस्त होते दुखों से ।

सब ओर मुख, सिर और ग्रीवावाला,
वह भगवान विराजता सबके हृदय में,
कल्याणस्वरूप वह सर्वव्यापी परमेश्वर,
पहुँचा हुआ है जगत के कण-कण में ।

सबके शासक, अविनाशी, प्रकाशस्वरूप,
परमपुरुष परमेश्वर प्रेरित करते सबको,
उनका आनन्दमय विशुद्ध स्वरूप पाकर,
जीव प्राप्त करे परम निर्मल लाभ को ।

अंगुष्ठमात्र परिमाणवाले वे परमेश्वर,
मन के स्वामी, स्थित रहते सबके हृदय में,
जो साधक जान लेते इन परब्रह्म को,
फिर नहीं पड़ते जन्म-मरणरूपी बन्धन में ।

हजारों सिर, आँख, हाथ और पैर वाले,
जगत को घेर, सर्वत्र व्याप्त हैं परमेश्वर,
नाभि से दस अंगुल ऊपर हृदयाकाश में,
सब जीवों में स्थित हैं परब्रह्म परमेश्वर ।

जो पहले हो चुका है और होनेवाला है,
खाद्यान द्वारा बढ़ रहा वर्तमान में जो,
यह सारा जगत परमपुरुष परमात्मा ही है,
अमृतस्वरूप और मोक्ष के स्वामी हैं वो ।

सब जगह हाथ और पैरवाला है वो,
सब जगह आँख, सिर और मुखवाला,
सब जगह कान भी हैं परम पुरुष के,
सबको घेरकर सब जगह स्थितिवाला ।

समस्त इन्द्रियों से रहित होने पर भी,
समस्त इन्द्रियों के विषयों को जाननेवाला,
सबका स्वामी और सबका शासक है वो,
सबको अपने में सब तरह आश्रय देनेवाला ।

समस्त स्थावर और जंगम जीव समूहरूप,
जगत को वश में रखनेवाले परमेश्वर,
अन्तर्यामी, नौ द्वारवाले पुर[106] में स्थित,
ब्राह्य जगत में भी लीलारत वे परमेश्वर ।

हाथ बिना ग्रहण, पैर बिना गमन करता,
आँख बिना देखता और कान बिना सुनता,
ज्ञेय और जानने में आनेवाला भी जानता,
पर उस पुराण-पुरुष को कोई नहीं जानता ।

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, महान से भी महान,
वो छिपा हुआ जीव की हृदयरूपी गुफा में,
उसकी कृपा से ही उसे जाना जा सकता,
जिसे जान फिर वो पड़ता नहीं दुःख में ।

संसिद्धि प्राप्त महात्माओं का कहना है,
अजन्मा, नित्य, व्यापक कहते वेद जिसे,
मृत्यु आदि विकारों से जो सर्वथा रहित है,
वो अन्तर्यामी परब्रह्म जान लिया मैंने ।

चतुर्थ अध्याय

रंग रूप से रहित होकर भी जो,
किसी निहित प्रयोजन के कारण,
सृष्टि के आदि में अपनी शक्तियों से,
अनेक रंग-रूप कर लेता है धारण ।

फिर अन्त में यह सम्पूर्ण जगत,
विलीन भी हो जाता है जिनमें,
वे एक अद्वितीय परमदेव परमात्मा,
हमको शुभ बुद्धि से संयुक्त करें ।

वे ही अग्नि हैं, वे ही सूर्य हैं,
वे ही वायु हैं और वे ही चन्द्रमा,
वे ही अन्यान्य प्रकाशयुक्त नक्षत्र हैं,
वे ही जल, प्रजापति, वे ही ब्रह्मा ।

---

[106] अर्थात नौ द्वारवाले मनुष्य शरीररूप नगर में, जिसके दो आँख, दो कान, दो नासिका, एक मुख, एक गुदा और एक उपस्थ ये नौ द्वार हैं ।

स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी या वृद्ध,
प्रकट हो रहे आप ही इन सब रूपों में,
यह सम्पूर्ण जगत है आपका ही स्वरूप,
सब ओर मुख किए आप ही विराटरूप में ।

आप ही सब प्रकार के पशु-पक्षी हैं,
आप ही मेघ, ऋतुएँ और समुद्र भी,
आप से ही सम्पूर्ण लोक उत्पन्न हुए,
सबमें व्यापत आप, प्रकृति के स्वामी ।

अपने सदृश भूत समुदायों को रचनेवाली,
त्रिगुणमयी प्रकृति को अज्ञानी जीव भोगता,
पर ज्ञानी पुरुष इस भोगी हुई प्रकृति को,
नि:सार और क्षणभंगुर समझ त्याग देता ।

परस्पर मित्र, साथ रहनेवाले दो पक्षी,
एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर रहते,
एक वृक्ष के फल स्वाद लेकर खाता,
दूसरा[107] खाता नहीं, बस रहता देखते ।

गहरी आसक्ति में डूबा हुआ जीवात्मा,
मोहित हुआ दीनता से शोकरत रहता,
जब जान लेता अपने से भिन्न ब्रह्म को,
तब ही वो सर्वथा शोकरहित हो रहता ।

जिसमें समस्त देवगण भलीभाँति स्थित हैं,
सम्पूर्ण वेद भी उस परम व्योम में स्थित,
जो मनुष्य इस रहस्य को नहीं जानता वो,
वेदों से क्या प्रयोजन कर सकेगा सिद्ध ?

लेकिन जो मनुष्य जान लेते हैं,
तत्त्व से उन परब्रह्म परमेश्वर को,
फिर वे उस परमधाम में स्थित रहते,
आते नहीं वहाँ से कभी लौटकर वो ।

छन्द, यज्ञ, व्रत, सदाचार के नियम आदि,
और जो कुछ भी पदार्थ वर्णित हैं वेद में,
इन सबको प्रक्रति के अधिष्ठाता परमेश्वर,
अपने अंश-पञ्चभूत तत्त्वसमुदाय से रचते ।

माया से बँधा जीव इस जगत में,
छूट नहीं पाता माया के बन्धन से,
परमेश्वर का साक्षात् एकमात्र रास्ता,
सो प्रयत्न करना चाहिए उसका उसे ।

भगवान की शक्तिरूपा प्रकृति माया है,
परब्रह्म परमात्मा अधिपति हैं उसके,
व्याप्त हो रहा है यह सम्पूर्ण जगत,
उसीके अंगभूत कारण-कार्य-समुदाय से ।

प्रत्येक योनि का एक अकेला अधिष्ठाता,
यह जगत प्रकट और विलीन होता जिनमें,
उस सर्वनियन्ता को तत्त्व से जानकर वो,
स्थित हो जाता सदा-सदा की शान्ति में ।

इन्द्रादि देवों को उत्पन्न कर बढ़ानेवाले,
रूद्ररूप परमेश्वर सर्वज्ञ, अधिपति सबके,
जिसने सबसे पहले हिरण्यगर्भ को देखा था,
वे परमदेव शुभ बुद्धि से युक्त करें हमें ।

---

[107] पहला पक्षी जीवात्मा और दूसरा पक्षी परमात्मा । जीवात्मा भोगों का भोक्ता बनता है और परमात्मा अभोक्ता बन जीवात्मा को देखता रहता है ।

सबके अधिपति, सब लोकों के आश्रय,
सब जीव-समुदाय पर जो शासन करते,
श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भेंट समर्पण कर उन्हें,
उन्हें पाने को हम उनकी पूजा करते ।

सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म हैं जो,
जाने नहीं जाते उनकी कृपा बिना,
सब जीवों की हृदयरूपी गुफा में स्थित,
अनेक रूप हो करते जगत की रचना ।

सब ओर से जग को घेरे रखनेवाले,
उन सर्वोपरि अद्वितीय महेश्वर को जान,
जगत प्रपंच से विरत हो वो महापुरुष,
अविनाशी शान्ति में करता विश्राम ।

समस्त ब्रह्माण्डों की रक्षा करनेवाले,
जिन्हें देवता और वेदज्ञ ध्याते रहते,
उस परमदेव को इस प्रकार जानकर,
वे मृत्यु के बन्धनों को काट डालते ।

सबके सार और अत्यन्त सूक्ष्म हैं जो,
उसे अन्तर्यामी और सबमें व्याप्त जान,
सब बन्धनों से सर्वथा छूट जाता वो,
उस परमदेव परमेश्वर को ऐसे जान ।

परमेश्वर के गुण और प्रभाव को सुन,
द्रवित और विशुद्ध हृदय से ध्यान कर,
साक्षात् कर लेते जो परमदेव परमेश्वर का,
अमृतस्वरूप हो जाते सब बन्धन तोड़कर ।

जब अज्ञानमय अन्धकार सर्वथा मिट जाता,
तब दिन न रात, सत न असत ही रहता,
एकमात्र कल्याणकारी शिव ही वह तत्त्व है,
जिनसे यह ज्ञानचक्र फैला, चलता रहता ।

ऊपर से, नीचे से न ही कहीं और से,
पकड़ा नहीं जा सकता वो अग्राह्य कैसे भी,
समझने-समझाने से सर्वथा विलक्षण वो,
उन 'महान यश'[108] की कोई उपमा नहीं ।

प्राकृत नेत्रों से देखे नहीं जा सकते,
कृपापात्र ही देख पाते दिव्य नेत्रों से उन्हें,
यह रहस्य जान जो उनका चिन्तन करते,
जन्म-मरण से छुटकारा मिल जाता उन्हें ।

हे रुद्र ! तू अजन्मा, अभय देनेवाला,
तेरी शरण आया, छूटने संसारचक्र से,
कल्याणमय परमशान्त स्वरूप आपका,
सदा के लिए रक्षा करें मेरी इस भय से ।

हे सबका संहार करनेवाले रुद्रदेव !
हम आपको सदा ही पुकारते रहते,
आप ही हमारी रक्षा करने में समर्थ,
अतः हम आपसे यह प्रार्थना करते ।

आप हम पर कभी कुपित न हों,
हमारी और पुत्र-पौत्रों की रक्षा करें,
धन-धान्य, गौ आदि को क्षति न हो,
हमारे वीर-योद्धाओं की भी रक्षा करें ।

[108] अर्थात जिनका यश सर्वत्र फैला हुआ है वे परात्पर ब्रह्म ।

पञ्चम अध्याय

जो परमेश्वर ब्रह्मा से भी अत्यन्त श्रेष्ठ हैं,
जो छिपे हुए हैं अपनी माया के पर्दे में,
देश-काल से सर्वथा अतीत और अविनाशी,
विद्या-अविद्या दोनों विद्यमान जिनमें ।

विनाशशील जड़वर्ग को कहा गया अविद्या,
जीव समुदाय कहा गया विद्या नाम से,
विद्या और अविद्या दोनों का स्वामी,
सर्वथा विलक्षण वो परमेश्वर इन दोनों से ।

समस्त योनि, समस्त रूप और कारणों पर,
जो अकेला ही अपना आधिपत्य रखता,
ज्ञान दिया पहले जन्में कपिल ऋषि को,
वो ही है जिसने उन्हें जन्मते देखा था ।

बुद्धि आदि और आकाशादि जगत-जाल,
विभक्त कर जो उनका संहार कर देता,
फिर पुनः पहली सी ही सब रचना करके,
वो परमेश्वर सब पर स्वाधिकार रखता ।

सब दिशाओं को सब ओर से जैसे,
सूर्य प्रकाशित करते देदीप्यमान होता,
वैसे ही अकेला वह सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर,
सब कारणरूप शक्तियों का है नियन्ता ।

समस्त तत्वों की शक्तिरूप स्वभाव को,
जो अपने संकल्परूप तप से पकाता[109],
फिर परिवर्तित कर देता नाना रूपों में,
और गुणों का जीवों से संयोग कराता ।

वे सब कारणों के परम कारण,
सारे जगत पर करनेवाले शासन,
समस्त वेद उन्हीं से निकले हैं,
उपनिषद करते उनका ही वर्णन ।

वेदों के उन प्राकट्य स्थान परमेश्वर को,
ब्रह्माजी और अन्य जिन्होंने भी जाना,
उन्हीं में तन्मय हो वे आनन्दरूप हो गये,
उन्हें जानना चाहिए जो चाहते उन्हें पाना ।

बँधा हुआ त्रिगुणों से जो जीवात्मा,
कर्म करता रहता भोगरूप फल पाने को,
जन्म लेता विभिन्न योनियों में इस कारण,
पर बँधा रहता वहाँ भी त्रिगुणों से वो ।

तीन गतियाँ होती मृत्यु के अनन्तर उसकी,
देवयान, पितृयान या जन्मते-मरते रहना,
जब तक मुक्त नहीं हो जाता जीवात्मा,
इस संसारचक्र में होता उसका घूमना ।

सूर्य सम प्रकाशमान अंगुष्ठमात्र जीवात्मा,
हो रहा युक्त संकल्प और अहंकार दोनों से,
बुद्धि के गुण और अपने गुण[110] के कारण,
सूक्ष्म आकारवाला सूजे की नोक के जैसे ।

---

[109] अर्थात आकाशादि तत्वों की जो भिन्न-भिन्न शक्तियाँ प्रलयकाल में लुप्त हो गयी थीं, उन्हें अपने संकल्प द्वारा पुनः प्रकट करते हैं ।

[110] संकल्परूप बुद्धि के गुण से अर्थात अन्तःकरण और इन्द्रियों के धर्मों से तथा अहंतारूप अपने गुण से अर्थात अहंता-ममता आदि से सम्बद्ध होने के कारण सूजे की नोक के आकारवाला है और परमात्मा से भिन्न है । बुद्धि आदि को सूजे की नोक के जैसे कहा गया है इसीलिए जीवात्मा को यहाँ सूजे की नोक के सदृश कहा गया है ।

बाल की नोक के सौवें का सौवें भाग,
उससे भी सूक्ष्म जीवात्मा का स्वरूप,
असीम होने पर भी एकदेशीय हो रहा,
संकल्प और अहंता से होकर युक्त ।

न स्त्री है, न पुरुष है, न ही नपुंसक,
कोई भेद नहीं जीवात्मा में शरीर का,
लेकिन जब जिस शरीर को करता ग्रहण,
उससे संयुक्त हो बन जाता ये वैसा ।

संकल्प, स्पर्श, दृष्टि, मोह, भोजनादि[111] से,
जीवों के शरीर की वृद्धि और जन्म होते,
जीव अपने कर्मानुसार फल भोगने के लिए,
नाना लोकों में घूमते जन्म लेते रहते ।

अपने कर्म-संस्कार और शरीर के धर्म,
और अहंता-ममता आदि के वशीभूत हो,
नाना स्थूल और सूक्ष्म रूप ग्रहण करता,
इच्छा से नहीं जीवात्मा, पर परवश हो ।

सर्वत्र व्याप्त और आदि-अन्त से रहित,
समस्त जगत की जो रचना करनेवाले,
अनेकरूपधारी, सबको घेरनेवाले परमेश्वर,
मुक्त हो जाते उन्हें तत्त्व से जाननेवाले ।

भावग्राही, आश्रयरहित, सृष्टि-संहारकर्ता,
कल्याणस्वरूप और सोलह कला रचनेवाले,
उन परमदेव परमेश्वर को जो जान लेते,
सदा के लिए मुक्त हो जाते वे जाननेवाले ।

षष्ठ अध्याय

कोई जगत का कारण बतलाते स्वभाव,
कोई काल को बतलाते इसका कारण,
मोहग्रस्त जानते नहीं परमेश्वर की महिमा,
घूम रहा यह संसारचक्र जिनके कारण ।

काल के भी महाकाल, सर्वगुणी, व्यापक,
सारे संसार के शासक, सब कुछ जाननेवाले,
यथायोग्य चल रहा उनसे शासित संसार,
मनुष्य बने इस प्रकार चिन्तन करनेवाले ।

पञ्च महाभूतों को रच, निरीक्षण कर,
संयोग किया चेतन का जड़ तत्त्व से,
इस प्रकार उन परमदेव परमेश्वर ने,
प्रकट किया जगत को स्वयं अपने से ।

एक-अविद्या, दो-पुण्य और पापरूप कर्म,
तीन गुणों और आठ प्रकृतियों के साथ,
जगत रचने को परमेश्वर ने संयुक्त किया,
जीवात्मा को काल व सूक्ष्म गुणों के साथ ।

---

[111] भिन्न-भिन्न जीवों की उत्पत्ति और वृद्धि भिन्न-भिन्न प्रकार से होती है, जैसे कछुए के अण्डों की संकल्प से, पक्षियों के अण्डों की स्पर्श से, मछली आदि की आसक्तिपूर्ण दर्शन से, मनुष्य व पशुओं की अन्न-भक्षण और जलपान से और वृक्ष-लता अदि की वृष्टि से ।

सत्त्वादि गुणों से व्याप्त कर्मों को,
आरम्भ कर, समस्त भावों के साथ[112],
लगा देता उन परमेश्वर में जो साधक,
छूट जाता उसका कर्मफल से साथ ।

देह और इन्द्रियों का भेद नहीं उनमें,
बिना इन्द्रियों के इन्द्रिय-व्यापार करते,
ज्ञान, बल और दिव्य शक्तियों के स्वामी.
बड़ा तो क्या, कोई समान नहीं उनके ।

उन कर्मों का यों अभाव हो जाने पर,
संचित कर्म-संस्कार भी नष्ट हो जाते,
जीवात्मा जड़-तत्त्व से विलक्षण होने से,
वे साधक परमात्मा को तुरन्त पा जाते ।

जगत में कोई शासक न स्वामी उनका,
सब उनकी प्रेरणा और आज्ञा को मानते,
सर्वत्र परिपूर्ण, निराकार, सबके परम कारण,
अजन्मा, अज्ञेय, सबके हृदय की जानते ।

आदिकारण, कालातीत, कलारहित होकर भी,
जीव-प्रकृति संयोग के कारण के भी कारण,
उन एकमात्र स्तुत्य, अन्तर्यामी परमदेव को,
उपासना कर, करना चाहिए पाने का यत्न ।

मकड़ी छिपा लेती ज्यों जाल में खुद को,
परमेश्वर भी आच्छादित अपने कार्यों[113] से,
जिन्हें देख नहीं पाते जीव इस कारण,
अपने निजस्वरूप में वे हमें स्थापित करें ।

यह संसार निरन्तर चलता रहता जिससे,
काल, संसार, आकारादि से सर्वथा अतीत,
पापहन्ता, समस्त ऐश्वर्यों के अधिपति,
वे अन्तर्यामी सबके हृदय में सदा स्थित ।

सब प्राणियों में छिपा हुआ वो सर्वव्यापी,
समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा,
कर्माध्यक्ष, सबका साक्षी और चेतनस्वरूप,
गुणातीत, पवित्र सबका आश्रय परमात्मा ।

यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं पर आश्रित है,
टिका हुआ उन्हीं की सत्ता के आधार पर,
अमृतस्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जाता,
ज्ञानयोगी उन परमेश्वर को ऐसे जानकर ।

परमेश्वर के ही अंश होने से निष्क्रिय,
अनन्त जीवात्माओं के जो अकेले नियन्ता,
एक प्रकृतिरूप बीज को बहुत प्रकार से जो,
रचना करके इस जगत के रूप में रचता ।

देवो के देव, ईश्वरों के ईश्वर परमेश्वर,
सम्पूर्ण जगत के अधिपति, रक्षक सबके,
सबसे श्रेष्ठ वे, उनसे श्रेष्ठ नहीं कोई,
सर्वरूप होकर भी वे पृथक हैं सबसे ।

उन हृदयस्थित परम सुहृद परमेश्वर को,
जो धीर पुरुष तन्मयता से देखते रहते,
शाश्वत परमानन्द प्राप्त होता उन्हीं को,
अन्य दूसरे यह आनन्द पा नहीं सकते ।

---

[112] अर्थात जो कर्मयोगी सत्त्व, रज और तम-इन तीन गुणों से व्याप्त अपने वर्ण, आश्रम और परिस्थिति के अनुकूल कर्तव्य-कर्मों का आरम्भ करके उनको और अपने सब प्रकार के अहंता, ममता, आसक्ति आदि भावों को परमेश्वर को समर्पित कर देता है तो उस समर्पण के कारण उन कर्मों से उसका सम्बन्ध न रहने से वे उसे फल नहीं देते ।

[113] अर्थात अपनी स्वरूपभूत मुख्य एवं दिव्य अचिन्त्य शक्ति से उत्पन्न अनन्त कार्यों द्वारा, स्वभाव से ही अपने को आच्छादित कर रखा है ।

जो एक नित्य चेतन सर्वाधार परमात्मा,
करता जीवात्माओं का कर्मफलभोग विधान,
ज्ञान और कर्मयोग से प्राप्त करने योग्य,
बन्धनों से मुक्ति मिल जाती उन्हें जान ।

सूर्य, चन्द्र, तारे, विद्युत् या अग्नि,
इन किसी का भी वहाँ प्रकाश नहीं,
उसके प्रकाश से प्रकाशित होते ये सब,
सम्पूर्ण जगत प्रकाशित होता उससे ही ।

यह ब्रह्माण्ड सर्वत्र परिपूर्ण है जिनसे,
वे प्रकाशरूप परमात्मा अग्नि हैं जल में,[114]
उसे जान मनुष्य भवसागर पार हो जाता,
अन्य दूसरा कोई मार्ग नहीं पाने को उन्हें ।

वे सर्वस्त्रष्टा, सर्वज्ञ, आत्मयोनि, कालातीत,
सर्वदिव्यगुण सम्पन्न, सबको जाननेवाले,
प्रकृति व जीवात्मा के स्वामी और शासक,
जगत के कारक व उससे मुक्ति देनेवाले ।

जगत के स्वरूप में स्थित, अमृतस्वरूप,
लोकपालों में भी स्थित अन्तर्यामीरूप से,
नियन्त्रण और संचालन करते वे जगत का,
कोई नहीं जो उन पर शासन कर सके ।

निश्चय ही जो ब्रह्मा को उत्पन्न करता,
और करता उसे वेदों का ज्ञान प्रदान,
उस आत्मबुद्धि को प्रकट करनेवाले के,
आश्रित हो, मैं मुमुक्षु उन्हें करता प्रणाम ।

कलारहित[115], निष्क्रिय, निर्मल, शान्त,
अमृतस्वरूप और मोक्ष के परम सेतु हैं जो,
धधकते अंगारोंवाली अग्नि से निर्विकार,
उन्हीं का चिन्तन करता, ध्याता उन्हीं को ।

जब मनुष्यगण इस आकाश को,
चमड़े की तरह लपेट सकेंगे,
तब ही उन परमेश्वर को जाने बिना,
वे दुःख-सागर से उबर सकेंगे ।

यह प्रसिद्द है की श्वेताश्वतर ऋषि ने,
तप और परमदेव परमेश्वर की कृपा से,
ब्रह्म को जान ब्रह्मतत्त्व का उपदेश किया,
देहाभिमानशून्य अधिकारियों को तत्त्व से ।

वर्णित हुआ था यह रहस्यमय ज्ञान,
भलिभाँति वेदान्त में, पूर्वकल्प में,
अशान्त, स्वपुत्र या जो शिष्य न हो,
देना नहीं चाहिए यह ज्ञान उन्हें ।

परमदेव परमेश्वर में परम भक्ति जिसकी,
वैसी ही भक्ति गुरु के प्रति है जिसमें,
उपरोक्त रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते,
केवल ऐसे ही महात्मा पुरुष के हृदय में ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

---

[114] यह सर्वविदित है की समुद्र में बड़वानल नामक अग्नि होती है, जल से विद्युत् बनती है और जल अर्थात H_2O में O प्राणवायु अर्थात अग्नि का कण है ।

[115] अर्थात संसार के सम्बन्धों से रहित ।